एक छोटा सा
BREAK !!!
A Treasure of short stories
युगप्रधानाचार्यसम प.पू. पंन्यास प्रवर
श्री चंद्रशेखर विजयजी म.सा.

# * समर्पण *

इन सब (कथाओं से) लाभ हो...
खूब फायदा हो....

* वह तत्त्वजिज्ञासुवर्ग को...जो एक छोटी सी कथा को लेकर भी अपने जीवन के, विश्व संचालन के, सनातन प्रचलन के अबाधित सत्यों, अविचलित तथ्यों, अविदित रहस्यों को पाने में समर्थ होते है।

* वह विनोदप्रियजन वर्ग को...जो कक्षा-वांचन के माध्यम से अपने **free** समय को सदुपयोग में लेना सोचते है; और भी ऐसे सात्त्विक वृति के रस पोषण के लिए **spare time** निकालकर भी मन की प्रसन्नता को बनाए रखना सही समझते है।

* वह शिशुवत्सलहितेच्छु वर्ग को...जो अपनी जिम्मेदारी समझकर नियमित दौर पर अपने बच्चों को, पोतों को वैविध्यपूर्ण कहानियाँ सुनाने की ठान लेना जरुरी समझते है और अतःएव रोज-बेरोज नये नये प्रसंगो को बच्चो के आगे रखकर संस्कार सिंचन को महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते है।

* वह स्वव्यक्तित्व विकासलक्षी विद्यार्थीवर्ग...जो हमेशा अलग अलग तरह के साहित्य पढना पसंद करके, घटना-वर्णन को लेकर अच्छे-अच्छे गुण मूल्य को अपने जीवन में उतारने के लिए जागृत रहना आवश्यक मानते है।

# दिखने में छोटी लगे, घाव करे गंभीर

उक्त को सार्थक करे ऐसी जीवन परिवर्तक
और आदर्श छोटी-छोटी कथाएँ का रसथाल
यानि

* लेखक *

युगप्रधानाचार्यसम प.पू.पंन्यास प्रवर
श्री चंद्रशेखर विजयजी महाराजा

* प्रकाशक *

**कमल प्रकाशन ट्रस्ट**

102-ए, चंदनबाला कोम्प्लेक्स, आनंद नगर पोस्ट ऑफिस के सामने, भठ्ठा, पालडी, अहमदावाद-7.

*** लेखक ***

**युगप्रधान आचार्य सम प.पू.पंन्यास श्री चंद्रशेखरविजयजी महाराज साहेब**

*** अनुवादक ***

**डॉ. रजनीकान्त शान्तिलाल शाह,** (M.A, Ph.D)

**करजण**

*** सहयोग ***

**श्री पवनभाई बैद,** (C.S) **सुरत**

*** आवृत्ति ***

**हिंदी आवृत्ति** : 1000

**गुजराती आवृत्ति में** 28000 **नकल छप चुकी है ।**

**मूल्य** : 70/-

*** प्राप्ति स्थल ***

**कमल प्रकाशन ट्रस्ट**

102-ए, चंदनबाला कोम्पलेक्स,
आनंद नगर पोस्ट ऑफिस के सामने, भट्ठा,
पालडी, अहमदावाद-7.

**नरेश भाई**

373, मिंट स्ट्रीट, राजेन्द्र काम्पलेक्स
(महाशक्ति होटल के पास) चेन्नई-79
फोन: 9841067888

*** मुद्रक ***

DESIGN & PRINTED BY

Firsst Look
IMPRESSION GUARANTEED....

9597511135

# कहाँ क्या पढेंगे ?


| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 1. | जीव में शिव दर्शन | 10 |
| 2. | धर्मसिंहसूरि जी की धर्मरक्षा | 13 |
| 3. | साधर्मिक भक्ति की माया ; उदयन हेमचंद्रसूरि,कुमारपाळ | 25 |
| 4. | क्रोधाग्नि क्या नही जलाती ? | 29 |
| 5. | अन्य के सुख के लिये कितना बडा त्याग ! | 33 |
| 6. | निमित्त कैसे पटक देते हैं ! | 36 |
| 7. | सत्य की प्राप्ति के लिये बहुत त्याग करना पडता है । | 40 |
| 8. | अशुभ निमित्तों की अप्रतिम ताकत | 44 |
| 9. | हर बात में जी हुजूरी नही चलती | 46 |
| 10. | प्रायश्चित रहित पाप की भयावहता | 50 |
| 11. | "साधुजीवन दुरूह है " | 53 |
| 12. | कैसी भीषण गरीबी ! | 55 |
| 13. | आज्ञापालन में ही धर्म | 57 |
| 14. | अपात्र को पद नही दिया जा सकता । शील-ब्रह्मचर्य | 60 |
| 15. | शिवाजी का शील | 62 |
| 16. | संयमित जीवन से लाभ | 62 |
| 17. | शुकदेव : "मैं जन्म धारण नहीं करूँगा " | 63 |

| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 18. | वाह, राणा रायमल्ल ! वाह तुम्हारा न्याय-प्रेम | 64 |
| 19. | अष्टावक्र ऋषि की अग्निपरीक्षा | 65 |
| 20. | महासती पद्मिनी | 66 |
| 21. | चंद्रशेखर आजाद की ब्रह्मचर्य प्रतिबद्धता | 69 |
| 22. | श्रेष्ठीकन्या की शीलरक्षा | 72 |
| 23. | वह व्रत जगदीपक | 71 |
| 24. | शील के लिए भाई ने बहन की गरदन कलम कर डाली | 76 |
| 25. | तब सीता मुझे माँ दिखाई दी | 79 |
| 26. | सीता को उठाते समय क्या रावण ने सीता का स्पर्श नही किया था ? | 82 |
| 27. | कामुक को माँ बनाया | 84 |
| 28. | कैसा सहज सदाचारी युवक विमल ! | 86 |
| 29. | जयशिखरी | 87 |
| 30. | ज्ञानी को वासना कभी भी प्रभावित नहीं कर सकती | 88 |
| 31. | संघमाल कौन पहने ? | 89 |
| 32. | युवा अर्थात् काम का दास ! | 90 |
| 33. | क्या धन से कभी तृप्ति हो सकती है ? | 91 |
| 34. | विद्वान को भी वासना मार सकती है | 92 |
| 35. | न्याय तो सर्वत्र समान होता है : -चंद्रशेखर आजाद | 94 |
| 36. | कैसी है विषयवासना | 95 |
| 37. | भाभी के संस्कारों की परम्परा | 96 |
| 38. | स्वार्थांध नारी मृणाल | 96 |

| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 39. | मात्र विचार के पापवश निरंतर बरबाद हो रहा रूपसेन | 98 |
| 40. | निमित्तों में फंसते जीव | 101 |
| 41. | अब्रह्म का स्मरण भी कितना भयंकर ! | 105 |
| 42. | जिसने भी पलटकर देखा वह मरा | 106 |
| 43. | "तब जमाना शरीफ था ।" | 107 |
| 44. | गुण्डा भी दिलदार होता है | 107 |
| 45. | सचमुच ब्रह्मचर्य दुष्कर दुष्कर है | 108 |
| 46. | नौकरों के पिता तुल्य सेठ | 109 |
| 47. | कुमारपाल के पुत्र की कैसी प्रभुभक्ति | 110 |
| 48. | नवाब को भी महाजन की कैसी मर्यादा ! | 110 |
| 49. | ऐसे श्रोता को बोध दिया ही नही जा सकता | 111 |
| 50. | करुणा और ब्रह्मचर्य | 111 |
| 51. | लोटे को तो मांजना ही पड़ता है । | 112 |
| 52. | नियमितता | 112 |
| 53. | पूर्वजन्म का प्रमाण –तीव्र बुद्धि | 113 |
| 54. | अभिमान करने से तो सो जाना बेहतर है । | 113 |
| 55. | दया इसी का नाम ! | 114 |
| 56. | माता ने पुत्र को सही राह दिखाई । | 114 |
| 57. | हम किसके साथ ? मानव या भगवान के साथ ? | 115 |
| 58. | अंगरक्षक की कैसा आत्मबलिदान ! | 115 |
| 59. | व्यापारी की कैसी नीतिपरायणता ! | 116 |

| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 60. | भगवान से बढकर और किसकी आज्ञा होगी भला ? | 116 |
| 61. | नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार रखें । | 117 |
| 62. | मौत से भी अधिक भय विश्वासघात का | 117 |
| 63. | आत्मौपम्य भाव | 118 |
| 64. | इन्स्टंट टर्निंग पोइण्ट | 119 |
| 65. | धर्म के स्वांग में ही अधर्म | 120 |
| 66. | अहिंसा कायर के वश की बात नही | 120 |
| 67. | धर्म में तो सदा अतृप्ति ही रहनी चाहिये..... | 121 |
| 68. | प्रेम देने से ही प्रेम मिलता है ! | 121 |
| 69. | पाठशाला के पाँच कों (पांच पैसे) का प्रभाव | 122 |
| 70. | कभी भी पीछेहठ करने में पीछेहठ मत कीजिए | 123 |
| 71. | दो की लड़ाई में तीसरे को मलाई | 123 |
| 72. | जिसका जो व्यसन | 124 |
| 73. | मृत्युवेला में टॉलस्टॉय का भयंकर गुस्सा | 124 |
| 74. | हिटलर के नाम एक किशोर का पत्र | 125 |
| 75. | धर्मक्रिया में फल की अधीरता नही करनी चाहिए | 126 |
| 76. | क्या ईश्वर है ? | 126 |
| 77. | अपनों के द्वारा पहुँचाये गये दु:ख से अधिक पीड़ा होती है । | 127 |
| 78. | सच्चा धर्मीजन कभी दु:खी नही होता । | 127 |
| 79. | मारने वाले को भी जीवित रखा-कैसा आर्यदेश ! | 128 |
| 80. | मौत का अहसास कितनी ताकत देता है ! | 129 |

| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 81. | जयकारा तो भगवान का ही बुलायें | 129 |
| 82. | तकलीफों के बीच भी धर्म करते रहें । | 130 |
| 83. | सच बोलने का लाभ | 131 |
| 84. | अन्य का जीवन खराब न हो ऐसा आचरण करें । | 131 |
| 85. | सिकंदर तो और अनेक जन्म लेंगे पर अरस्तु का क्या ? | 132 |
| 86. | अधिक त्यागी कौन ? साधु या संसारी? | 133 |
| 87. | अवगुणी से भी सीखा जा सकता है । | 133 |
| 88. | हमारे पराजय का कारण विलास | 134 |
| 89. | कभी रुपया कमाने के लिए चार आने खोने भी पड़ते हैं ! | 134 |
| 90. | जैन दीक्षा का अजैनों पर प्रभाव ! | 135 |
| 91. | क्या अब बच्चे माँ-बाप को संस्कार देंगे ? | 136 |
| 92. | क्या होगा इस नयी पीढी का ? | 136 |
| 93. | सब अपनी अपनी डफली अपना अपना राग बजाते हैं । | 137 |
| 94. | सत्यवादी कैसा होता है ? | 137 |
| 95. | साधर्मिक भक्ति से तीर्थंकर हुए | 138 |
| 96. | कैसी अद्‌भुत साधर्मिक भक्ति ! | 139 |
| 97. | लोगों को अन्य बातों में कभी भी रस-रुचि होती नही है । | 139 |
| 98. | बिगड़ी बाजी को सुधार लेना सीखो । | 140 |
| 99. | क्या काल ने करवट बदली है ? | 141 |
| 100. | धर्माचार्य की धर्मरक्षा | 142 |
| 101. | नीतिधर्म की कैसी जबरदस्त ताकत | 142 |

| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 102. | पारसमणि सेठ हठीसिंह | 143 |
| 103. | साधु से जैसे तैसे काम हो ही नही सकते । | 143 |
| 104. | रात्रिभोजन त्याग की महिमा | 144 |
| 105. | कैसे परदु:खभंजक सेठ ! | 144 |
| 106. | अबजपति ! बेमौत मरा ! | 145 |
| 107. | सिकंदर की आँखें खुल गईं | 146 |
| 108. | मैं कल की चिन्ता नहीं करता | 147 |
| 109. | धन के पाप से दो कवियों की मौत | 148 |
| 110. | धन से डरते दीनदयाल | 151 |
| 111. | धन : समृद्ध बनाये पर संतोषी भी बनाये? | 152 |
| 112. | अमर बनने चले सिकंदर | 153 |
| 113. | लखलूट वैभव -एक पैसा | 157 |
| 114. | हाय, धनलालसा की क्रूरता ! | 158 |
| 115. | तब आकाश में चंदा उग चुका था । | 158 |
| 116. | कांचन देख मुनिवर चलित होते हैं । | 163 |
| 117. | हाय,धन पाने के लिए नाक-कान कटवाने दिये । | 164 |
| 118. | कंजूस बुढिया | 166 |
| 119. | अब्जों रुपयों की सम्पत्ति का मोल कितना ? | 168 |
| 120. | अति धनवान कार्नेगी बेमौत मरा | 169 |
| 121. | साध्वीजी छिपकली हुईं । | 170 |
| 122. | "ओ अंगुठी ! तुम श्रीखण्ड खाओ" | 171 |
| 123. | पाप की जड : लोभ | 172 |

| क्रमांक | कहानी का शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| 124. | धनमूर्च्छित साधु ने मार खायी | 173 |
| 125. | मुनि वचन के कारण पांच मौत | 174 |
| 126. | किसके बोध का असर होगा ? | 176 |
| 127. | बाह्य व्यवहार का महत्व | 176 |
| 128. | आचरण और उपदेश में फर्क असह्य है । | 177 |
| 129. | व्यवहार-शुद्धि अति आवश्यक | 178 |

# 1. जीव में शिव दर्शन

"ईश्वर और अल्लाह एक ही परमात्मा के नाम हैं ."-ऐसा प्रतिपादन करनेवाले कबीर सबके अप्रिय हो गये थे। हिंदु कहते थे कि हमारे ईश्वर को अल्लाह कैसे कहे जा सकता है ?मुस्लिम कहते थे कि हमारे अल्लाह को ईश्वर कैसे कह सकते हैं ?

कई हिंदुओं ने इसमें कबीर का वैकल्य नजर आया। वे उनके प्रति रुष्ट हुए। कबीरको सरेआम बदनाम करके कीर्तिभ्रष्ट करने की उन्होंने जीद की।

किसी गणिका को धन देकर अपने अनुकूल कर लिया। एकबार दोपहर के वक्त सामने चले आ रहे कबीरजी की तरफ वह गणिका दौड गई और कबीर से लिपट गई। उस समय वहाँ पांचसौ लोग जमा हो गये। कबीर के विरोधी तो पहले ही वहाँ पहुँच गये थे।

गणिका ने चीख चिल्लाकर कहा; "अरे ओ ठग ! तुमने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है। इसी लिये मैं गर्भ से हूँ। मेरे पेट में रहे बच्चे का बाप तू है। तुम मुझे गुजारे के लिये पैसे दो। तुम्हें मुझे प्रतिमाह गुजारे की राशि निश्चित करनी होगी।"

यह शब्द सुनते ही कबीर विरोधी लोगों ने शोर मचा दिया। कबीर को "शरम...शरम" कहा और अनुचित शब्द प्रयोग करके निंदा करने लगे।

कबीर ने उनकी परवाह किये बिना उस औरत से कहा,"देखो स्त्री ! यदि तुम्हारे पेट में रहे बच्चे का बाप मैं ही हूँ तो मुझे तुम्हारा निर्वाह करना ही चाहिये। मेरे घर एक स्त्री है,तुम भी चलो और उसके साथ रहो। मैं तुम्हें सारी सुविधाएँ दूंगा। चलो मेरे साथ और मेरे घर में रहो।"

कबीर आगे आगे और वह बडबडाती औरत कबीर के पीछे पीछे । उस औरत के पीछे तमाशेबाजों का टोला।

दिन पर दिन बीतने लगे। कबीर ने अपनी पत्नी के साथ उस औरत की जरूरतों को पूरा करना शुरू किया। उसके उत्कृष्ट व्यवहार के कारण वह गणिका अपने दुष्कृत्य को लेकर टूट गई। उसने कबीर के पैरों में गिरकर अपने द्वारा किये गये झूठे नाटक के बदले में माफी मांगी। वह बहुत रोने लगी।

कबीर ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा;"बहन ! तुम तनिक भी चिंता मत करो। तुमने मेरा कोई अहित नही किया है। कोई किसीका कुछ भी नही बिगाड सकता।"

विरोधियों का दाँव विफल हो जाने के कारण कबीर को तंग करने के लिये प्रजा का न्याय करनेवाले काजी के पास गये।

लोगों ने काजी से गाँव में बस रहे और धर्म के नाम पर पाखण्ड चला रहे कबीर नामक आदमी को सजा देने की बिनति की। काजी ने कबीर को न्यायालय में बुलाकर पूछा कि "क्या आपने गणिका से दुर्व्यवहार किया है?"

कबीर ने नम्रतापूर्वक नीडरता के साथ कहा;"साहब ! मैंने जो कुछ किया है, वह सब उस औरत से ही पूछिये। वह जो कहेगी वह मुझे स्वीकार है।"

काजी ने कबीर से कहा कि -"ऐसी स्वीकृति देकर आप बहुत बडा जोखिम ऊठा रहे हैं। अतः ऐसा विधान करने से पहले पुनः विचार कर लिया जाये।"लेकिन कबीर अपनी बात पर डटे रहे। उन्होंने कहा कि "काजी साहब ! उस औरत में भगवान का वास है। भगवान जो कहेंगे वह मुझे मंजूर ही रहेगा।"

काजीने गणिका को न्यायसभा में बुलाया।

वह तो अपने काले कारनामों पर बहुत पश्चात्ताप कर रही थी। अतः काजी ने कबीर पर लगाये गये आरोप के विषय में जैसे ही सवाल किया कि वह बाघिन की तरह बीफर गई। उसने चीखकर ,कबीर विरोधी लोगों के समूह की ओर अंगुलिनिर्देश करते हुए कहा "धरती के एक भगवान पर इन शठों ने मुझे निमित्त बनाकर कहर बरपा दिया है।

उनके पैसों के लालच में फंसकर मैंने कबीर पर खुलेआम झूठा आक्षेप करके उनकी प्रतिष्ठा को कलंकित कर दिया है ! हाय अब मेरा क्या हाल होगा?"

यह सब सुनकर काजी तो भौंचक रह गये। विघ्नसंतोषी ,ईर्षालु लोगों के प्रति उन्हें नफरत हो गई।

अब वे उन्हें सजा करने के लिये तत्पर हुए। उन्होंने कबीर से कहा,"हे महान पुरुष ! मैंने आपको

परेशान किया है। आप मुझे क्षमा कीजिए।"

कबीर ने कहा," आप तो भगवान हैं। भगवान कभी किसी को मुसीबत में नही डालते।" काजी तो गणिका में तथा उनमें भगवान को देखकर कबीर को मन ही मन प्रणाम करने लगे।

काजी ने कहा :"कबीरसाहब ! इन दुष्ट हिंदु लोगों ने आप पर व्यभिचार का झूठा तोहमत लगाया है।

आपको बेआबरू कर दिया। अतः मैं चाहता हूँ कि भविष्य में वे पुनः ऐसा अपकृत्य न करे,इस लिये मैं उन्हें सख्त दण्ड दूँ। आप मुझे बताइए कि उन नराधमों को मैं क्या दण्ड दूँ ?"

"तौबा...तौबा....तौबा..."कहकर मुख पर हाथ धरते हुए कबीर ने कहा ,"अरे काजी साहब ! आप यह क्या कह रहे हैं ? वे सारे मेरे भगवान हैं। क्या भगवान कभी भूल कर सकते हैं ?क्या भगवान को दण्ड दिया जा सकता है ? आप यह सब ऊल्टा क्यों सोच रहे हैं ?मेरी तो समझ में यह बात आ ही नही रही है।"

काजी तो जीवमात्र में कबीर को हो रहे साक्षात् शिवदर्शन देखकर दंग रह गये। न्याय का सिंहासन छोडकर वे कबीरजी के पैरों में झूक गये।

वे कबीर विरोधी भी गद्‌गद् हो गये ,रोने लगे,,दौडकर सारे कबीर के पैरों में झूक गये और अपने दुष्कृत्य की माफी मांगने लगे।

उस वक्त अधीर हुए कबीर ने ना... ना...कहते हुए कहा "अरे सभी भगवंतो ! यह क्या कर रहे हैं ?

तुम्हें ऐसा नही करना चाहिये।"

आखिर में सब लोग आँसू सहित वहाँ से बिदा हुए।

# 2. धर्मसिंहसूरि जी की धर्मरक्षा

लगभग चार दशक पूर्व की यह बात है। अभी अभी प्राप्त शिलालेख आधारित इस घटना को जरा सा रंग देकर यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

उस समय भारत में विजयनगर नामक बडा साम्राज्य था। बुक्कराय नामक वैष्णवधर्मी राजा वहाँ राज्य करते थे। राजा सरल स्वभावी,सर्वधर्मप्रेमी और धर्मनिष्ठ थे। प्रजा को न्याय देने में वे तटस्थ रहते थे और निष्पक्ष न्याय करते थे।

विजयनगर वैष्णव बहुल था तो जैनों की आबादी भी कम नही थी। दोनों के बीच स्पर्द्धाभाव बना रहता था। कभी कभी तो ईर्ष्याभाव भी झलक जाता था। विजयनगर में धर्मी गृहस्थों को तत्त्वाभ्यास करने के लिये सुयोग्य और विद्वान पण्डितों की सुगठित पाठशाला थी। अनेक साधु और साध्वियाँ अध्ययन के लिये इस पाठशाला में पढने के लिये विजयनगर में स्थिरता करते थे। लगभग ५० से १० साधु-साध्वियाँ इस निमित्त कायम रहती थी। वहाँ के धर्मनिष्ठ गृहस्थ भी उनकी सेवा-शुश्रूषा अत्यंत उल्लसित भाव से करते थे।

एक समय की बात है। तब तत्वज्ञान की पाठशाला में जो मुनि अध्ययन कर रहे ते वे सभी प्राथमिक कक्षा के मुनि थे। विशिष्ट विद्यासंपन्नवादी कोई मुनि नही थे।

वैष्णव महंत के लिये वाद में विजयी होने का अनोखा मौका हाथ लग गया। उन्होंने मिलकर निर्णय किया कि जैन साधुओं को वाद करने के लिये आह्वान किया जाये।

राजसभा में जाकर महाराजा बुक्कराय के समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया। ४५ दिन के बाद का दिन निश्चित हुआ।

जैन मुनि तो इस नयी स्थिति को लेकर बहुत चिन्तित हो गये। उन्होंने जैन संघ के अग्रणियों को बुलाकर वाद करने में अपना असामर्थ्य जाहिर किया।

जैन अग्रणी भी यह सुनकर चिन्ता में पड गये। जानबुझकर जैनों को सोते में पकड लिया है। इस बात का सबको अहसास हो गया था। जैन मुनियों का पराजय निश्चित है;यह बात तो स्पष्ट हो गई

थी।

इस समस्या का कोई हल ढूंढने के लिये समग्र जैन संघ ने रातभर जगकर विचार विमर्श किया।

आखिरकार एक अति विकट उपाय मिला। बात लगभग असम्भववत् थी। वह इस प्रकार थी।

विजयनगर से पूरे छहसौ गाऊ (बारहसौ मील )की दूरी पर अयोध्या था। वहाँ वादीशिरोमणि धर्मसिंहसूरिजी नामक आचार्यश्री अपने विद्वान शिष्यों के साथ विराजमान थे। यदि वे स्वयं चालीस दिन में बारहसौ मील चलकर (विहार) करके आ जाये तो उसका जयजयकार हो जाये। बारहसौ मील में रेगिस्तान भी पडता था। विंध्य के पर्वतीय प्रदेश आते थे। बीस कोश का भयानक बन भी आता था और तुफानी गंगा नदी भी आती थी।

आंधी,तूफान,बारिश,अंधड इत्यादि की तो बारंबार सम्भावनाएँ !

इतनी सारी तकलीफों का संकट पचास वर्ष से अधिक अवस्थावाले आचार्य पर कोई डालना नही चाहता था पर दूसरी ओर जैन संघ के वाद-पराजय की जिम्मेदारी की कोई कल्पना तक नही कर सकता था। आखिरकार श्रीसंघ के अग्रणियों ने आचार्य के समक्ष यह बात रखने का निर्णय किया और संघ के पांच प्रतिनिधि पवन गति से दौडनेवाली सांडनी पर सवार होकर अयोध्या गये।

वे रात्रि के नौ बजे पहुँचे। अयोध्या का अग्रणी वर्ग समाचार प्राप्त होते ही उपाश्रय पहुँच गया। मुनि भी एकत्र हो गये।

सब लोग आचार्यश्री के पास बैठे। सारी बातें हुई।

अब वाद के चालीस दिन शेष थे। चालीस दिन में बारहसौ मील का पाद विहार करना था।

आशा और निराशा के सूर सब की ओर से निकलते रहे। मुनिगण भी आचार्यश्री की ओर देख रहा था।

विमर्श करते करते सुबह के चार बज गये। अब जो निर्णय करना था वह आचार्यश्री को ही करना था। उस निर्णय का स्वागत करने के लिये सब लोग एकमत से तत्पर थे। समग्र शिष्यवृंद भी जो भी भोग देना पडे वह देने के लिए सज्ज था। आचार्य की चिंताएँ उनके वदन पर झलक रही थी। रातभर बातें चली;नींद तक आँखों से दूर हो गई थी।

निरव शान्ति का भंग करते हुए पूज्यश्री ने कहा,"वैष्णव धर्मी लोगों ने भारी भूल कर दी है। मौके का फायदा ऊठा लेने की उनकी दियानत बहुत बदनामीपूर्ण थी। अब उन लोगों को सबक पढाने का समय आ गया है कि भगवान जिनेश्वर देव के अनुयायी चाहे कैसी भी विकट स्थिति का मुकाबला कैसी मर्दानगी से कर सकते हैं !

"मेरे भक्त साधुओ तथा संन्यासिओ ! भारी प्राकृतिक संकटों की सम्भावना के साथ चालीस दिन में बारहसौ मील का पादविहार करने के लिये ललकारा गया है ! ना...इससे हमें पीछे हटना नही है। परमात्मा की महती कृपा, गुरुदेवों की असीम करुणा ,समग्र संघ की शुभेच्छाओं के बल पर मैं आज सुबह ही सूर्योदय के साथ विहार शुरु करना चाहता हूँ। मुझे जीवन की कोई परवाह नही। मुझे तो किसी भी कीमत पर धर्मरक्षा करनी है। बोलो,प्रिय मुनिगण ! आप में से कितने लोग मेरा साथ दे रहे हो?"

करीब साठ मुनिराज थे। गुरुदेव के प्रत्येक वाक्य सुनकर सबका खून खौल रहा था। सबने समवेत स्वरों में कहा ,""गुरुदेव ! हम सब आपके साथ चलेंगे।""

गुरुदेव के मुखारविंद पर आनंद की आभापूर्ण लहर दौड गई। उन्होंने कुल मिलाकर अठारह साधुओं को पसंद किया। जिन्हें साथ नही चलने का अवसर नही मिला वे उदास हो गये परंतु जैसी गुरुदेव की आज्ञा" ऐसा मन ही मन सोचकर शांत रहे।

और सुबह...उन्नीस धर्मसंरक्षकों का पादविहार प्रारम्भ हुआ। अयोध्या में पवन गति से विहार के समाचार फैल गये थे। अतः मुँहअँधेरे ही उपाश्रय के पास सैंकडो लोग ईकट्ठा हो गये थे।

ना...उस क्षण तो किसीको कल्पना तक नही थी कि विजयनगर का वह वाद विजय पांच पांच मुनियों का भोग लेनेवाला है।

और...सैंकडो धर्मात्माओं की शुभेच्छाओं के साथ उन उन्नीस महात्माओं ने विहार प्रारम्भ किया।

"पूरे चालीस दिन और बारहसौ मील" प्रत्येक क्षण दृष्टिपथ पर झलकता वह लक्ष्यांक था। अतः शुरूआत से ही विहार की गति बढायी थी ताकि प्रतिदिन तीस कीलोमीटर की प्राप्ति हो।

वाद में विजयी होकर धर्मरक्षा का कार्य संपन्न करने का उत्साह सबके हृदय में स्पंदित हो रहा था। वह प्रत्येक सांस में घोंटा जा रहा था। पैरों के प्रत्येक कदम में उत्साह का बल छिपा नही रहता था। आचार्यश्री भी पचपन की अवस्था में मानो नयी जवानी प्राप्त किये हों ऐसी तीव्र गति से आगे बढे जा रहे थे। भिक्षा मिले या न मिले,पानी भी मिले या न मिले किसी के चेहरे पर इसकी किोई फिक्र झलकती नही थी।

एक ही धून थी -चलते रहो....और जीत लो.....!

पर...एक दिन विजय के थाल में अठारह वर्षीय नवयुवा साधु का मस्तक रखा गया।

सब नाव पर बैठकर गंगा नदी के तेज प्रवाह से गुजर रहे थे। ठीक मध्य में नाव आयी और किसी महाकाय जलचर की जोरदार थप्पड लगने से नाव को झटका लगा और वह एक तरफ मुड गई। उस समय एक मुनिवर अपनी जगह पर से झटका खाकर एकाएक ऊछलकर तेज धारा में जा गिरे।

यह दृश्य सबके लिये जुगुप्सा प्रेरक था। डूब रहे मुनि ने ऊँची आवाज में कहा,"गुरुदेव ! आप मेरी चिंता न करें। वाद में विजयी होकर ही रहना "और "अरिहंत अरिहंत" बोलते हुए मुनि तत्क्षण जलनिमग्न हो गये।

आचार्यश्री कुछ पल के लिये तो अवाचक् से रह गये। उनके मुख्य शिष्य,वादी-मुनि वीरबाल ने उन्हें आश्वस्त किया तब वे स्वस्थ हुए।

गंगा नदी पार ऊतरकर विहार तीव्र गति से आगे बढा।

लगभग डेढसौ-दोसौ कि.मी.आगे बढे ही थे कि एक और युवामुनि ने अपनी जीवनलीला को पूर्णविराम दे दिया।

उसी समय अतिभयानक आँधी चली तत्पश्चात भयंकर अंघड और उसके बाद धारासार वर्षा हुई। कुदरत का यह महाभयानक ताण्डव था। जहाँ तीनसौ-चारसौ वर्ष पुराने वृक्षराज बरगद भी निर्मूल होकर ऊखड गये थे। वहाँ इन मुनियों ने अवशता अनुभव करते हुए किसी न किसी चीज का सहारा लिया पर एक मुनि कहीं सहारा लेने जा रहे थे कि पवन का भीषण धक्का लगने से किसी शिला

से जोर से जा टकराये और उनकी खोपडी को सख्त मार लगी। वे वहीं पर गिर पडे। लहू रूकने का नाम नही ले रहा था। गुरुदेव आदि मुनि येन केन प्रकारेण वहाँ पहुँच गये। गुरुदेव ने उस शिष्य का माथा अपनी गोद में लिया।बचने की तो कोई उम्मिद ही नही थी। मात्र क्षणें गिननी थी। आराधना करने के क्षण थे।

युवा शिष्य ने कहा,"गुरुदेव ! मेरी सद्गति तो निश्चित है। मेरी फिक्र न करें। आप वाद में विजयी होकर लौटें। मेरी यही आखिरी ईच्छा ....इतना कहते कहते उनकी जीभ बाहर निकल आयी। प्राण पखेरु अनंत का यात्री हो गया। आँखें शून्य हो गईं।

आचार्यश्री की आँखों से बिना रूके बहे जा रहे आँसुओं ने उस शव का प्रक्षाल किया। सारे मुनियों की आँखें अश्रुभीनी हो गई।

पर...पर सब यह बराबर समझते थे कि भावुकता में बहते रहने का यह समय नही था। कर्तव्य की वेदिका पर आरूढ होकर सफलता प्राप्त करने से कम कोई बात अभी सोचनी भी नही थी।

कुछ ही पलों में स्वस्थता धारण कर, आँधी के शांत होते ही सब ने वही तीव्र विहार शुरू कर दिया।

पचास-सौ कि.मी .चलने के बाद एक पहाड आया। उसकी संकरी धार पर विहार शुरू किया।

खूब ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद एकाएक सतर्कता में चूक हो जाने के कारण एक मुनि रास्ता चूक गये और सीधे मुह खोले खडी , विकराल खाई की ओर गुलांटें मारते हुए जाने लगे। पत्थरों से टकराकर लहुलुहान हुए उस युवा मुनिराज के आखिरी शब्द थे। "ओ गुरुदेव ! ओ प्रिय मुनिओ! आखिरी प्रणाम। (मत्थएण वंदामि ) कर्तव्य को गौण नही करना। विजय की वरमाल धारण करके ही रहना।"

हृदय की थमी हुई धडकनों के साथ सब ने उस मुनि की मौत के दर्शन किये। हाथ ऊठाकर बिदाई दी। मुनि कथाकार थे। राह चलते समय थकान अनुभव करते मुनियों को आपद्धर्म के रूप में रसपूर्ण कथाए सुनाते और थकान का विस्मरण करा देते थे। अद्भुत फूर्ति का शरीर में संचार कराकर अनेक कोशों की दूरी देखते ही देखते तय करा देते थे।

ऐसे मुनि की कमी से सभी मुनियों के हृदय को गहरी चोट लगी।

पर...चाहे कैसी भी चुनौतियाँ आये ,उनका स्वीकार करके यशस्वी होने के अतिरिक्त और कुछ सोचना ही नही था।

कुछ ही पलों में विहार प्रारम्भ हो गया।

विजय के थाल में यह तीसरा मस्तक रख दिया गया। मुख पर बैठी हुई मक्खी को जितने वक्त में उडाया जा सके उतना ही वक्त प्रत्येक मृत्यु के पीछे निकालकर शेष मुनिगण तीव्र गति से विहार शुरु कर देते थे।

विंध्य पर्वत की आखिरी सीढियाँ सभी ऊतर रहे थे कि मौत से भी भारी घटना जीवित मुनि के जीवन में घट गई।

वह मुनि थे,आचार्यश्री के दाहिने हाथ समान शिरोमणि वीरबाल। एकाएक किसी गढ्ढे में उनका पाँव फंस गया और भारी मोच आ गई। तीव्र वेदना के कारण उन्हें बहुत पीडा होने लगी ,वे कराहने लगे। इस वेदना को देखकर गुरुदेव को ऐसा लगा कि इसका इलाज करने तथा आराम करने के लिये ज्यादा समय देना पडेगा।

"वीरबाल"! गुरुदेव ने कहा,"तुम भी मुझ से विलग होंगे ? अरे ! मेरे पाँव में मोच आयी होती तो भी चलता ;वहाँ वाद में तुम्हारी अत्यंत आवश्यकता थी। यह तो मेरा दाहिना हाथ कट गया।"इतना कहते तो गुरुदेव की आँखों में आँसू उमड आये। गुरुदेव की गोद में वीरबाल सोये थे। माता का स्नेहिल हाथ वीरबाल के माथे को सहला रहा था। मुनि वेदना तो विस्मृत कर गये थे पर "ऐसी मोच बारबार आये , जिससे कि माँ का प्यार मिले।"ऐसा मुनि का मन कह रहा था।

मुनि वीरबाल ने कहा,"गुरुदेव ! आप मेरी तनिक भी चिंता न करें:आप मुझे ऐसे आशिष दीजिए कि मैं आप से भी पहले विजयनगर पहुँच जाऊँ। यदि आपके आशिष रहे तो कुछ भी असाध्य नही।"

गुरुदे ने माथे पर हाथ रखकर कुछ सेकंड तक आँखें मुंदकर मंत्र जाप किया। बाद में बोले;" वत्स ! तुम्हारी जैसी भावना हो वैसा ही हो।"मेरी ऐसी अभिलाषा है।

मुनि वीरबाल के साथ तीन मुनियों को सेवा के लिए रखकर गुरुदेव ने उसी तेज गति से विहार

प्रारम्भ किया।

उन्नीस में से तीन मुनि परलोक गमन कर गये और ये चार मुनि यहाँ से अलग हुए। अब बारह मुनि रहे।

तेज गति से विहार चल रहा था। औसतन चालीस से भी ज्यादा किलोमीटर की रफ्तार रहने लगी। अब तो सामने से विजयनगर भी तीव्र गति से निकट आ रहा हो ऐसा लगता था पर मुनि अब थकने लगे थे। यदि धर्मरक्षा की आग दिल में धधक न रही होती तो किसी की हिम्मत नही थी कि इतना विहार कर सके।

ऐसे में आखिर में बीस गाऊ (साठ कि.मी.) लम्बा बन आया। इस बन से पार निकल जाने के बाद चालीस किलोमीटर में तो विजयनगर की सीमा आ जाती थी।

पर एकसाथ बन को पार करने की हिम्मत आचार्यश्री के अतिरिक्त और किसी में नही थी। अति कठिन इस बन विहार की कल्पना मात्र से मुनि पश्त हिम्मत हो गये।

सभी मुनिजन एक घटादार पेड के नीचे बैठ गये। गुरुदेव से कहा," प्रियतम गुरुदेव ! अब तो हम हिम्मत हार गये हैं। मात्र आपके नाम से, आपके जोश को देखकर हम यहाँ तक तो पहुँच गये हैं पर ऐसा लगता है कि अब तो हम एक भी कदम चल नही पायेंगे।"

गुरुदेव को शिष्यों की बातों में शुद्ध सत्य प्रतीत होता था। हकीकत में अति उग्र विहार हो गया था। अब विकराल बन को धडल्ले से पार कर जाना मुश्किल था ,पर ऐसे निकट आकर रूक जाना भी ठीक नही था। कुछ देर शांत रहकर गुरुदेव ने कहा;" प्रिय शिष्यो ! हम सब कितने उत्साह के साथ अयोध्या से निकले थे ! विजयनगर के वाद में घोर पराजय देने और विपक्षियों के लक्ष्य को मटियामेट करके जिनशासन की ध्वजा को आकाश में फहराने का लक्ष्य ही हमारी ताकत बन गया। उसी बल के चलते हम सब ने उग्र विहार किया पर अब तुम्हारा शरीर तुम्हारा सहयोग नही कर रहा हो ऐसा लगता है पर मेरे शिष्यो ! अब तो बहुत गई,थोडी रही"जैसा चित्र है। हम सब काफी आगे बढ गये हैं। इस बन को पार करते ही बस यूँही खेल खेल में हम विजयनगर की सीमाओं को छू लेंगे।"

कुछ पल शांत रहकर गुरुदेव ने कहा; "तारणहार परमात्मा महावीरदेव जब इस विश्व में मौजुद

थे। उनके प्रचण्ड पुण्यबल से हजारों करोडाधिपति धनिक-अरे! मगध और वैशाली के महान राजा भी उस परम कृपालु के परम भक्त हुए थे। प्रभु वीर के प्रति अपरिसीम भक्ति के कारण उनका समस्त साधु गण और साध्वीगण के प्रति भी भक्तों की भक्ति की धून चढी थी। पानी मांगने पर दूध क्या घी प्राप्त हो ऐसी उत्कृष्ट भक्ति उस भक्त समुदाय में थी।

पर सबूर ! ऐसी उस भक्ति का मुनिगण ने स्वीकार नही किया था। ऐसी उस भक्ति का स्वीकार किया होता तो बडी तादाद में श्रमण तथा श्रमणियाँ मगध के विशाल साम्राज्य में या वैशाली में लगातार कई बरसों तक स्थिरता की होती। पर ना...उन्होंने ऐसा नही किया। उन्होंने तो भारतभर में भ्रमण किया। जहाँ मान के बदले अपमान मिले ,गुड के बदले गाली मिले, पानी भी मुश्किल से मिले ऐसे जंगली जैसे प्रदेशों में वे गये और उन्होंने प्रभु वीर का मार्ग प्रशस्त किया। उनको प्रभु वीर द्वारा प्रबोधित सम्यगदर्शन समझाया। प्रिय शिष्यो ! मालमलीदे खाकर मदमस्त होकर वे श्रमण-श्रमणियाँ भक्तराज्यों में पडी नही रही। इससे भारत वर्ष में जैन धर्म व्यापक हुआ; गहराई प्राप्त की।"

कुछ देर बाद शांत रहकर गुरुदेव पुनः बोलने लगे। उनके शब्द अब टूट रहे थे। हृदय में कल्पांत शुरू हो जाने की वजह से घुटन अनुभव कर रहे थे।

प्रिय शिष्यो ! यदि हमारे पूर्वज श्रमण एवम् श्रमणियों ने इस प्रकार जान की बाजी लगाकर परमात्मा महावीरदेव के नाम का सर्वत्र जयजयकार फैलाया हो....तो....ओ प्रियतम शिष्यो ! "गुरुदेव की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। गला अवरुद्ध हो गया। सारे शिष्य उनसे लिपट गये और कहा;" गुरुदेव ! बस,अब नही,अब आगे शब्द सुनने की हिम्मत हमारे अंदर नहौ है। ओ गुरुदेव ! हम तैयार हैं,एकदम तैयार हैं ;आदेश कीजिए। हम उसी क्षण से तीव्रतम गति से विहार प्रारम्भ कर देंगे। ओ कृपालु गुरुदेव ! हम से भूल हो गई। हम देह की कायरता के शिकार हुए। कोमल-नाजुक हुए। हाय ! लक्ष्य भूले। प्रभु वीर के धर्म का पक्ष भूले। कर्तव्य निष्ठा को भूले। ओ गुरुदेव ! हमें क्षमा कीजिए। अरे ! हमने तनिक आपकी काया की तरफ देखा होता तो ! चपला गति से दौड रहे आपके पैरों की ओर देखा होता तो ! उसके पीछे प्रवृत्त आपकी एकमात्र अडिग मनःशक्ति –हिमालय सी् आपकी मनःशक्ति के प्रति हमने एक नजर भी देखा होता तो हमारी ऐसी हीन दशा कभी

नही होती। गुरुदेव! क्षमा कीजिए, आइए,अब हम तेज गति से बन को पार कर लें।"

गुरुदेव ने अपने आँसू पोंछे। शिष्यों की पीठ को स्नेहपूर्वक अपने हाथ से सहलाया। ना...वे गुरु नही थे। वह तो "माँ" थे: गुरुमाता थे। ऐसे समय में मात्र गुरु कुछ भी नही कर सकते। यह तो गुरुमाता का ही काम है।

वन में प्रवेश हुआ। तेज गति से विहार होने लगा। एक ही दिन में चालीस किलोमीटर का विहार सम्पन्न हो गया पर कमनसीबी से दूसरे दिन से मूशलाधार बारिश शुरू हुई। तीन दिन पर्यंत यह धारासार बारिश चली। सभी मुनियों को किसी गुफा में यह सारा समय व्यतीत करना पडा। चालीस किलोमीटर की औसत से भी अधिक जो विहार किया था, वह मानो यहाँ किसी काम का नही रहा।

अविरत अनराधार बारिश की वजह से एक साधु को सख्त ठंड लग जाने के कारण बुखार चढ गया। दूसरे दिन सुबह तो उन्होंने होश गँवा दिया। उस दिन शाम को फिर होश संभाला पर वह क्षणिक था। वह गुरुदेव-माता की गोद में सोये थे। माँ की आँख से आँख मिलाकर बुखार से तपती लाल लाल आँखों मैं माँ ने यमराज को तेज गति से आगे बढता हुआ देखा। गुरुदेव ने समाधि देना शुरू किया। अंत में गुरुदेव ने उस मुनि से पूछा,"वत्स ! तुम्हें कुछ कहना है ?"

"जी गुरुदेव ! विजय की वरमाल पहनकर ही रहें। बस,मुझे आप से इतना ही कहना है।" और उसी क्षण आँखें बंद हो गई। साँस गति रुक गई। पिंजडा छोडकर हंस बिदा हो गया।

विजय के महाभियान में यह चौथे मुनिराज की मृत्यु थी। जो भी मरणोत्तर प्रक्रिया करनी थी ,वह कुछ ही क्षणों में संपन्न कर ली। बारिश के रूकते ही मुनियों ने कर्तव्यपथ पर कदम रख दिये। तीव्र गति से सब चलने लगे।...मानो दौड ही रहे थे। अब दिन भी बहुत कम बचे थे। घंटे भी बहुत कम बचे थे। वक्त की गति के साथ भागना था।

ऐसा करते करते एक धन्य दिवस की पौह फटी। विजयनगर की सीमा में मुनियों ने पाँव धरा। इससे सबके हृदय अति उल्लसित थे।

परंतु उसी सीमा पर एक और बलि चढ गई। ठीक उसी सीमा पर एक मुनिराज जोर से जमीन पर गिरे। गुरुदेव उनके पास पहुँच गये। अपनी गोद में उनका मस्तक रखा। मुनिराज ने अर्द्धबेहोशी की

अवस्था में टूटते हुए शब्दों में "गु...रु...दे...व...। वि...ज...य..." और गुरुदेव के मुख से तीन बार निसृत "अरिहंत.अरिहंत"शब्द सुनकर मृत्युलोक के यह मुनिराज देवलोक सिधार गये। अतिशय श्रम की वजह से मुनिराज मृत्यु का ग्रास हो गये थे।

इस बात से गुरुदेव अनजान नही थे। उन्होंने अपनेआप को बहुत सम्हालने की कोशिश की पर यह दिल फौलाद से तो बना नही था परंतु बाप का भी नही था। वह तो विशुद्ध माँ का दिल था। उसे लाख कोशिश करो वह हृदयहीन नही हो सकता। ऊल्टे वह तो टूट ही गया। उनकी आँखें अनवरत बरसती रही .शिष्यों ने गुरुमाँ के आँसू पोंछे! गालों को सहलाया,माथे को सहलाया.आश्वस्त किया। ऊलटी गंगा बहने लगी!

अंततः कुछ ही क्षणों में गुरुदेव ने बाजी सम्हाल ली। मरणोत्तर विधि संपन्न की। स्वस्थता धारण करली। खडे होकर मानों दौडने लगे।

आनेवाला कल ! चालीसवाँ दिवस ! विजयनगर में वाद का प्रारम्भ ! विजयश्री के वरण का वह धन्यतम आनंदमय क्षण !

ऐसे अनेक विचार तरंग तेज गति से मुनियों के मन में ऊठते रहते थे। उन विचारों से उत्पन्न उत्साह ही उनके पैरों में प्राण संचारित कर रहा था। पैरों को अनवरत दौडा रहा था।

पर किसी को भी पता नही था कि अभी शिर चकरा जाये ऐसी एक और घटना घटनी है और वह भी आचार्य के विषय में ही। उस दिन प्रातः विहार में आचार्यश्री (ठल्ला)शोच के लिये मुनियों से अलग होकर कुछ दूर गये। हमेशा पांच ही मिनट में लौट आनेवाले आचार्यश्री पचास मिनट के बाद भी वापस नही लौटे तब सब मुनि चिन्तित हो गये। सब अलग अलग दिशाओं में दूर सुदूर तक देखने के लिये गये। दोपहर हो गई फिर भी आचार्यश्री का कोई पता नही लगा।

विजयनगर से वंदनार्थ आये धर्मात्मा श्रेष्ठीवर्यों ने यह बात जब जानी तो वे भी अनेक विविध उद्वेग,व्यग्रता,क्रोध आदि का अनुभव करने लगे। सबका मन पुकार पुकारकर कह रहा था कि निश्चय ही वैष्णवों ने गुरुदेव का अपहरण करवा लिया है;वाद में विजय को मटियामेट कर देने के लिये ही तो!"

घर लौटकर जैनों का प्रतिनिधि मण्डल महाराजा बुक्कराय से मिला। सारी बात बतायी गई।

बुक्कराय न्यायी राजा थे। उन्होंने फौरन वैष्णवों के अग्रणियों को बुलाया और सख्त शब्दों में धमकाते हुए उनसे कहा कि यदि अपहरण जैसी कोई बात हुई तो उस अन्याय गुजारने के दण्ड के रूप में समग्र वैष्णव कौम को मैं विजयनगर के विराट साम्राज्य से निकाल बाहर करने का आदेश दूंगा।

इस फटकार का अपेक्षित प्रभाव पडा। उसी रात सुबह चार बजे वैष्णवों ने आचार्यश्री को मुक्त कर दिया।

सुबह की वेला में वे अपने शिष्यों के पास पहुँच गये। समस्त मुनिमण्डल अति हर्षित हो गया। यही तो वाद का दिवस था। अभी सोलह मील विहार करना शेष था और उसी दिन सुबह वाद की शुरुआत होनेवाली थी।

आचार्यश्री बहुत चिन्तित हो गये। मुख तक पहुँचा कौर मानो हाथ से छूटा जा रहा था। शाम पांच बजे उन्होंने विजयनगर में प्रवेश किया पर प्रवेश का आनंद चेहरे पर नही था किंतु राजसभा में आज क्या हुआ होगा ?इस प्रश्न जनित चिंता साधुओं के मुख पर घिरी हुई दृष्टिगत हो रही थी कि वहाँ एकाएक "वीर प्रभु की जय हो","वादि शिरोमणि धर्मसिंहसूरिश्वरजी महाराजा की जय हो" आदि आकाशचुम्बी जयकारों के साथ दौडे चले आते जैन दिखाई दिये।

सबने "कुछ" अच्छा (शुभ) अनुमान किया पर वह क्या ! इस विषय में सब की जिज्ञासा बढ गई।

ऐसे में एक धर्मात्मा श्रावक गुरुदेव के एकदम निकट आ गया। उसने सुखशाता पृच्छा की।

गुरुदेव ने कहा;"ये सारी बातें बाद में। ओ भले आदमी ! तुम मुझे यह बताओ कि आज वाद में हुआ क्या ?"

गुरुदेव ! गुरुदेव! बहुत गजब ढा गया है। शासनदेव ने कोई चमत्कार किया है। युवावस्था प्राप्त कोई साधु आज प्रातः विजयनगर पधारे और उन्होंने हमारे वाद की लगाम थाम ली और दिनभर उस महात्मा ने वैष्णव पण्डितों से जबरदस्त टक्कर ली है। अरे ! ऐसा भी क्षण आ गया था कि हमारी जीत लगभग निश्चित ही लग रही थी।"

"अरे ! अरे ! कौन वह महात्मा हैं ! मुझे उनके दर्शन जलदी कराओ। मैं उन्हें लाख लाख साधुवाद देना चाहता हूँ। आचार्यश्री ने एक ही साँस में यह सब धर्मात्मा को बता दिया !

अब बात तनिक आगे बढे उससे पहले तो ,"गुरुदेव ! ओ प्यारे गुरुदेव ! कहते ही कोई युवा महात्मा आचार्यश्री के पास तेज गति से पहुँच गये और उनके चरणों में झूक गये। बारबार वे अपने मस्तक से उन चरणों का स्पर्श करने लगे। उस गृहस्थ ने कहा ;"यही वह महात्मा हैं, जिन्होंने वाद को आगे बढाया है।"

"अरे ! अरे ! भाई ! तुम अपने पुण्यशाली मुख का दर्शन कराओ। तुम कौन हो?कैसा महान शासन संरक्षक साधु ! धन्य है तुम्हारी जनेता !"और जैसे ही उस महात्मा ने अपना मुँह ऊठाया और उसे देखते ही आचार्यश्री के मुख से तीखी हर्षमिश्रित चीख निकल आयी।"ओ बेटा! वीरबाल ! तुम खुद ! वाह...वाह..लेकिन मुझसे पहले तुम यहाँ कैसे पहुँच गये ?"

अपने गुरुभाई की करामात से सारे मुनि हर्षोल्लास के कारण लगभग पगला गये थे। सबके हृदय में आनंद समाये समाता नही था।

वीरबाल ने कहा,"गुरुदेव ! क्या आपने मंत्रजाप करके मुझे आशीर्वाद नही दिये थे कि "तुम मुझ से पहले विजयनगर पहुँच जाना "-बस उसी आर्शीवाद के बल से, जंगल के आदिवासी भीलों के चमत्कारिक औषध से तथा एकदम छोटे रास्ते के मार्गदर्शन से मैं यहाँ कल सुबह ही पहुँच गया। "गुरुदेव! आज अपनी विजय होकर ही रहेगी। वाद के दौर को मैंने जारी रखा है। आप आज ही राजसभा में विजयश्री का वरण कीजिए।"

यह सुनकर आचार्यश्री के आनंद की कोई सीमा नही रही। वक्त हो जाने पर भी सभी सीधे वाद सभा पहुँचे। मात्र दस ही मिनट में वादशिरोमणि आचार्यश्री ने वैष्णवों के धुरंधर पण्डितों को चित् कर दिया। जैनों की विजय घोषित हुई।

"जैनशासन की जय हो "के नारे से वादसभा का खण्ड गरज ऊठा।

समग्र जैनसंघ में आज सर्वत्र आनंद छा गया था।

हाँ...यह विजय थी पर दु:खदायी थी। उसने पांच पांच नवयुवा मुनियों का बलिदान ले लिया था।इसी लिए आचार्यश्री के मुख पर शोकरेखांकित हर्ष झलक रहा था और सभी मुनियों के अंतिम शब्द आचार्यश्री के अंतर को बारबार ऊठाते रहते थे, "गुरुवर ! विजयश्री का वरण करके ही रहें।"

# 3. साधर्मिक भक्ति की माया ;

## उदयन हेमचन्द्रसूरि, कुमारपळ

असह्य गरीबी से त्रस्त उदा वणिक ने आखिरकार घर छोड ही दिया । हाँ ...यह सब छोडते समय उसके दिल में भारी दु:ख था ।

नसीब आजमाने के लिये वह अपने समग्र परिवार के साथ निकल पडा । भूखमरी की दशा में कई कोश चलने के बाद एक नगर आया । विगत तीन दिन से उसे अन्न के एक दाने तक का दर्शन नही हुआ था । छोटे छोटे दो बच्चे ,एक बेटी सभी उपवासी थे । पत्नी की आँखों में आँसू थे लेकिन दिल में हिम्मत की कमी नही थी । वह पति का भी ढाढस बंधवाती रहती थी ।

नगर में प्रवेश तो हुआ पर जायें किसके घर ? किसकी चौकी पर सुस्ताया जाये ?पत्नी के कहने पर उदा भगवान के घर-जिनालय गया । प्रभुस्तुति करके चैत्यवंदन करना शुरू किया । पत्नी के कण्ठ में कुदरत (कर्म) ने मानों शहद रखा था । अतिमधुर कण्ठ से वह एक के बाद एक स्तवन गाती रही । वह प्रभुभक्ति में भावविभोर हुई । उदा भी इस कार्य में जुडा ।

पांच स्तवन हुए ,छठा ,सातवाँ ,आठवाँ स्तवन भी गाया गया क्यों कि सबसे बडा सवाल यह था कि जिनमंदिर से बाहर निकलने पर कहाँ जाया जाये ?

भूख से अवश हुए बच्चे तो माँ-बाप की गोद में कबके सो गये थे ।

निरंतर इतने सारे स्तवन गा रहे , भीषण गरीबी के मारे ,कई दिनों के उपवासी दिखनेवाले ये लोग उसी नगर की अमीर विधवा पुत्रवधू हसुमतीबाई भावसार की नजर से बच नही पाये । उसी वक्त वह बहन जिनपूजा करने के लिये जिनालय गई थी । उसने उदा की परिस्थिति को पूरी तरह से समझ लिया ।.वह सबके बाहर निकलने का इन्तजार करती हुई सुंदर स्तवन श्रवणा करती हुई मंदिर के एक कोने में बैठी रही।

जब उदा अपने स्वजनों के साथ बाहर निकला तब हसुमती ने बाहर निकलकर उन सबको प्रणाम किया । भोजन करने के लिए आमंत्रण देकर सबको अपने घर ले गई। अनन्य सत्कारभाव के

साथ सबकी साधर्मिक भक्ति की । तत्पश्चात प्रभावना स्वरूप अच्छी धनराशि आदि दी । तदुपरांत हसुमती ने पूछा कि,"भाई ! मेरे साथ नि:संकोच रहें । अब आप मुझे बतायें कि आप इस नगर में कहाँ रहेंगे ?और क्या करेंगे?"

उदा ने कहा," अब मेरे हाथ पर थोडा सा धन है । मैं वणिकपुत्र हूँ । अब क्या व्यवसाय करना है और धन कमाना है ?यह समझ तो मुझ में है । हाँ, रहने के लिये एक छत का जुगाड करना होगा।

उस बहन ने अपना ही छोटा सा स्वतंत्र घर रहने के लिये दे दिया । उदा के आग्रह के वश होकर उसका किराया निश्चित किया गया ।

कुछ ही समय में उदा को दुकान से अच्छी खासी बचत हुई । इससे कारोबार दिनप्रतिदिन बढता चला । ६-८ महिने में तो वह बडा व्यापारी हो गया ।

एक दिन उसने घर को खरीद लेने का विचार हसुमती के समक्ष रखा । बहन के लिये तो साधर्मिक भक्ति का सुअवसर था । अत:उसने अपना घर उदा को बेच दिया ।

दूसरे दिन उदा ने उस घर को उसकी बुनियाद सहित गिरवाना शुरू किया । जैसे ही बुनियाद का खनन शुरु किया कि उसमें से लाखों रूपयों के कीमती जेवरों से भरा चरु (कलश) निकला । उदा ने वह चरु बहन को दिया । बहन ने कहा;"मैंने तो यह घर कल ही बेच दिया है । अब उस चरु की मालकिन मैं नही रही । यदि मेरे भाग्य में वह चरु होता तो यह घर हमारे पास शतकों से हमारे पास था,तब यह चरु कयें नही निकला? और आप मालिक हुए उसके कुछ ही घंटों में क्यों निकला ?"

उदा को इस चरु का मालिकी हक "हराम" का लगा । उसने सिद्धराज जयसिंह की न्यायसभा में न्याय मांगा । दोनों पक्षों कों सुनकर राजा ने न्याय दिया कि उस चरु का मालिक उदा रहेगा ।

यह न्याय सुनकर हसुमती तो अतिआनंदित हो गई पर उदा को अनुचित लगा । अत: उसकी भूख और नींद हराम हो गई । एकाएक उसके मन में विचार कौंधा । उस विचार से वह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने दूसरे ही दिन से शिखरबंद जिनालय का निर्माण प्रारम्भ किया । उस चरु की सारी सम्पत्ति जिनालय के निर्माणकार्य में लगा दी ।

जब सिद्धराज जयसिंह को इस बात का पता चला तब वह ऐसे प्रजाजन के प्रति अत्यंत गौरव

अनुभव करने लगा। उसने दूसरे ही दिन उदा को अपने मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया।

उदा अब उदयन मंत्री हुआ।

जिनेश्वरदेव का वह परम भक्त था। गुरु का वह दास था। साधर्मिकों का वह प्रेमी था। जिनधर्म का वह माशूक था। पूज्यपाद देवचंद्रसूरिश्वरजी महाराजा उस समय सनातनधर्मियों द्वारा जैन धर्म पर बारबार हो रहे आक्रमण एवम् आक्षेपों से जब खूब व्यथित हुए थे तब रात्रिवेला में शासनदेवी ने आकर व्यथित आचार्यश्री को धंधुका में रह रहे चाचिंग नामक अजैन मोढ वणिक और पाहिनी नामक जैन माता के पुत्र चांगा को जैन धर्म की दीक्षा देने की प्रेरणा की। यह भी आश्वासन दिया कि वह आपकी समस्त मनोव्यथाओं का निराकरण करेगा। अतः सूरिजी ने धंधुका जाकर पिता की अनुपस्थिति में माता की सहर्ष सम्मति से चांगा को बहोर लिया। उसे लेकर वे खंभात पधारे।

इस तरफ व्यवसाय के सबब से बाहर गया चाचिंग घर लौटा और पाहिनी के पुत्र को बहोरा देने का पराक्रम जब उसने जाना तो वह बहुत क्रोधित हुआ। येन केन प्रकारेण अपने प्रिय पुत्र को वापस लाने के संकल्प के साथ वह खंभात गया।

सूरिजी को इस बात की खबर होते ही उन्होंने महामंत्री उदयन को बुलाकर सारी बात स्पष्ट कर दी।"आप बिलकुल निश्चिंत रहिए।"-इन शब्दों से सूरिजी को महामंत्री उदयन ने निश्चिंत कर दिया।

जैसे ही चाचिंग उपाश्रय पहुँचा कि तुरंत मंत्रीश्वर का सेवक उसे भोजन कराने के लिये ले गया। तब चांगा मंत्रीश्वर के घर में खेल रहा था। पिता को देखते ही वह दौड गया और पिता से लिपट गया। बाप-बेटा दोनों साथ ही भोजन करने के लिये बैठे। तब मंत्रीश्वर उदयन उनके सामने चौकी पर बैठे। स्वयं बहुत उमदा भक्ति कर लेने के बाद जब भोजन समाप्त हुआ तत्पश्चात मंत्रीश्वर ने उत्तम कोटि की धोती मंगवाकर चाचिंग के समक्ष रखी। उसके बाद तीनलाख सोनामुहरों की थैलियाँ मंगवाकर उसके समक्ष रखी। अंत में अपने दोनों युवापुत्रों को बुलाया।

मंत्रीश्वर ने चाचिंग से कहा,"प्रिय भाई ! हमारे समग्र जैन संघ के अत्यंत आदरणीय एवम् अत्यंत प्रिय गुरुदेवश्री देवेंद्रसूरिश्वरजी महाराजा को देवी से आपके लाडले बेटे चांगा के अति उज्ज्वल एवम् भव्य भावि को लेकर भविष्यकथन(आगाही ) हुई है। आपका चांगा हमारे जिनशासन

के नभ का चंदा बननेवाला है। भाई ! मैं जानता हूँ कि वह आपको अति प्रिय है पर मैं हमारे समस्त जैन संघ की ओर से बिनति करता हूँ कि आप हमारे पूज्य गुरुदेव की ईच्छापूर्ति कीजिए।

मैं आपको अतिथिसत्कार की प्रभावना के रूप में एक जोडी धोती और तीनलाख सोनामुहरें दे रहा हूँ। उपरांत अतितेजस्वी,व्यापार के बडे खिलाडी ऐसे अपने दो युवा पुत्र भी अर्पण करता हूँ। अब आप मुझे अपना लाडला बेटा मुझे सहर्ष समर्पित कीजिए।

मैं जब गुरुदेव को आपका बेटा सौंपूं,तब उनके मुखचंद्र पर कितना आनंद होगा,मैं उसका वर्णन करने में असमर्थ हूँ।"

"मंत्रीश्वर ! मंत्रीश्वर !"चाचिंग ने कहा :

"लो सौंप रहा हूँ ,अपना लाडला। अब आप आगे कुछ मत कहिये। मेरा लाडला यदि जिनशासन का चमकता सितारा बननेवाला हो तो ऐसा सद्भाग्य मुझ गरीब के भाग्य में कहाँ से ?"आप खुशी खुशी उसे स्वीकार कर लिजिए।

उपरांत इतनी सारी प्रभावना की मुझे क्या आवश्यकता है ?"आपके स्नेह के प्रतीक समान मैं इस धोतीजोडे का स्वीकार करता हूँ।"

ये सारी बातें सुनकर चांगा तो अति हर्षित होकर नाचता रहा। वह उनकी हर बात पर नाचता था।

और...एक दिन चांगा की विधिवत् दीक्षा हुई। उसका "सोमचंद्रविजयजी"नामाभिधान हुआ। यही मुनिराज भविष्य में हुए कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् हेमचंद्रसूरिश्वरजी महाराजा साहब।

इसी सूरिजी ने जैन शासन को परमाहेत् गूर्जरेश्वर कुमारपाळ की भेंट दी। इस कुमारपाळ ने जैन शासन का अमास्पिह बजाया।

हाँ ...इन सब के मूल में थीं-हसुमतीबाई भावसार नामक अमीर पूत्रवधू। उसकी जड में भी कारण था उस पुत्रवधू की साधर्मिक भक्ति। साधर्मिक भक्ति जिनधर्म के सभी अंगों को पुष्ट एवम् मजबूत बनाती है।

कभीकभार कालवश गहरे ऊतर गये धर्मकूप का जल एकाएक ऊपर आ जाता है।

# 4. क्रोधाग्नि क्या नहीं जलाती?

इस्वीसन की सोलहवीं शताब्दी का वह समय था। भारत पर मुगलों के शासनकाल की यह सत्य घटना है।

कालिपाद नामक एक धर्मचुस्त ब्राह्मण ढाका की नदी के तट पर सुबह वेला में स्नान करता था और सूर्यनारायण की उपासना करता था।

नदी किनारे पर ही ढाका के बादशाह की अत्यंत लाडली शाहजादी बेटी का महल था। वह शाहजादी कालिपाद के सशक्त और सुडौल शरीर को बारबार देखकर उसके प्रति मोहित हो गई।

एक दिन उसने पिता से मन की बात कही। अपनी बेटी एक नापाक आदमी से प्यार कर रही है ,यह बात सुनने का सामर्थ्य भी धर्मजुनूनी बाप में नही था।

बात सुनते ही वह आगबबुला हो गया। उसने तुरंत शाहजादी से कहा, "कौन है ,वह नालायक जवान ! अभी मैं उसे जिंदा जला दूंगा।"

एकदम स्वस्थता पूर्वक शाहजादी ने कहा," जो करना चाहो कर लो पर तुम्हें मुझे भी उसीके साथ जिंदा जलाना पडेगा। पिताजी ! मेरा निर्धार अचल है। या तो उसका हाथ या मृत्यु की शरण के अतिरिक्त और कुछ भी नही।"

पाषाण जैसे प्रत्येक भारी भरकम शब्द सुनकर बादशाह तो मूढ रह गया। उसका आक्रोश ठंडा पड गया।

दूसरे दिन उस बंगाली युवक को बादशाह ने राजसभा में बुलाया। उसके खूबसूरत शरीर को देखकर बादशाह का संकल्प निस्तेज हो गया।

उसने बंगाली युवक को सारी हकीकत बताने के बाद अंत में कहा कि"हे युवा ! यदि तुम इस्लाम धर्म का स्वीकार कर लो तो तुम्हारे दाहिने हाथ में मैं अपनी लाडली बेटी का हाथ रख दूँ और बायें हाथ में राज्य की लगाम ! जवान ! अविलम्ब हाँ कह दो!"

गंभीरता धारणकर मुस्कुराते हुए कालिपाद ने कहा," बादशाह सलामत ! आप मुझे जानते नही

हैं। मैं धर्मचुस्त ब्राह्मण हूँ। धर्म को बेचकर मुझे कुछ भी स्वीकार्य नही है क्योंकि इस संसार में धर्म से बढकर कुछ भी नही। मैं ऐसा मानता हूँ। आप मुझे किसी भी चीज से फुसला नही सकते ,भ्रमित नही कर सकते।"

कालिपाद के शब्दों में रही ठोस दृढता ,माधुर्य और महानता का त्रिवेणी संगम देखकर शाहजादी और बादशाह उसके प्रति अधिक आकृष्ट हो गये।

उसी वक्त कालिपाद की नजर शाहजादी की ओर गई। क्षणभर के लिये तो उसके लावण्य निथरते अंग को देखकर कालिपाद स्तब्ध रह गया। उसे तो वह स्वर्गसे उतरी हुई कोई अप्सरा ही नजर आयी।

और...उसके दिल में उस शाहजादीने जगह बना ली।

गो कि तत्पश्चात बादशाह के साथ यह युवा ब्राह्मण बहुत सख्ती के साथ अपनी बात पर अडा रहा लेकिन उसके दिल में तो शाहजादी के प्रति आकर्षण बढने लगा था।

अंतर से एक ही आवाज ऊठ रही थी। "शाहजादी का स्वीकार कर ले...ऐसा स्त्रीरत्न मत गँवा।"

उसके बाद हृदय में तुरंत दूसरी आवाज ऊठती थी। "ओ कालिपाद ! धर्म को खो देने के बाद यदि स्वर्ग मिल भी जाये तो उस स्वर्ग की क्या कीमत ?ना...ना...कालिपाद ! यह तो स्वर्गसे उतरी हुई कोई मोहिनी है। वह तो तुम्हारी समस्त साधना के अमृतकुम्भ को बरबाद करने के लिये ही आयी है।"

कालिपाद ने बादशाह से आखिरी बात कह दी ;"मैं अतितप्त सीसा पीने के लिये तैयार हूँ। परवरदिगार ! परंतु यवन कन्या का पति बनने की तथा यवन राज्य के राज्य की धुरा सम्हालने के लिये मैं बिलकुल तत्पर नही हूँ।

इस ब्राह्मण को शायद आप हाथी के पैरों तले कुचलवा सकेंगे पर आप मुझे अपने धर्म से विचलित नही कर सकेंगे।"

कालिपाद के वे आखिरी शब्द थे। उन शब्दों में ध्वनित उसके अटल निर्णय को जानकर ढाका का वह नवाब तो नखशिख क्रोधाग्नि से जलने लगा। "सैनिको ! उस नालायक को तत्काल कारागार

में बंद कर दो ।"नवाब ने फरमान किया ।

"कालिपाद ! सात दिन का समय देता हूँ । या तो मेरी लाडली का हाथ स्वीकार कर लो या फांसी का फंदा मांग लो ।"

दूसरे ही क्षण कालिपाद के हाथ में बेडियाँ पड गईं .उसे कारागार में बंदी बना लिया गया ।

कालिपाद के प्रति अपार ममत्व के कारण शाहजादी उसकी बहुत दरकार करने लगी । वह कालिपाद के लिये अपने सेवकों द्वारा रोज तीन बार श्रेष्ठ भोजन कारागार में भेजने लगी पर पहले ही दिन बंगाली ब्राह्मण ने उस सेवक को सूचित कर दिया कि वह यवन के हाथ का कोई भी खाना या दूध तक लेगा नही । हाँ ...पवित्र हिंदू के हाथ से गंगाजल अवश्य ग्रहण करेगा ।

सात दिन के सात उपवास हो गये । आठवें दिन कालिपाद को नवाब के समक्ष पेश किया गया । नवाब के सवाल का वही जवाब ऐसी ही दृढता के साथ दिये जाने पर नवाब ऊबल पडे और उसे फांसी देने का हुक्म दे दिया ।

पर अफसोस ! जिस क्षण जल्लाद कालिपाद को फांसी के मंच पर चडाने की तैयारी कर रहा था तब शाहजादी वहाँ दौड आयी और मंच से लिपट गई ।

नवाब को वहाँ आना पड गया । शाहजादी को लाख समझाया पर सारे प्रयत्न निष्फल हुए ।

अंततोगत्वा ब्राह्मण को नवाब ने मुक्त कर दिया । कालिपाद अत्यंत लुभावनी कसौटी से स्वयं सम्पूर्ण दोष रहित पार उतर जाने पर हुए अपार आनंद के साथ अपने घर की दिशा में दौड गया । अपने सारे स्वजन –भाई-भाभी आदि सब उसका अत्यंत आदरमान के साथ उसका स्वागत करेंगे -ऐसी कल्पनाएँ करता हुआ वह घर के दरवाजे पर आ गया ।

पर यह क्या ! दरवाजे में प्रवेश करने से रोकते हुए दरवाजे के बीच खडी भाभी ने कालि से कहा "सबूर ! घर में तुम्हारा प्रवेश निषिद्ध है । सात सात दिन यवनों के संग और यवनी के प्यार में जो रहा हो ,वह खानपान से भ्रष्ट होता है । अपनी शील रक्षा भी नही कर सका हो । ऐसी पापात्मा का पाँव हमारे घर में एक पल के लिये भी नागवार है ।"

भाभी के शब्दों ने काटो तो खून नही ऐसी स्थिति में कालिपाद को रख दिया !

सैंकडो धर्मचुस्त ब्राह्मण,पूजारी,याज्ञिक,पुरोहित सारे वहाँ एकत्र हुए थे। भाभी के प्रत्येक शब्द को इन सब ने "मौन " द्वारा मानो समर्थन दे दिया था।

भाभी के शब्दों की छडी की मार खाकर टूटे हुए कालि ने अपना सारा हाल बताया पर सबने उसका मजाक बना लिया।

और...उसी क्षण कालिपाद ब्राह्मण मिट गया । उसने अतिभयानक क्रोधावेश में आकर चिल्लाकर कहा :"रे सतिया के सत को परखने की समझ (शक्ति )भी आप सब में नही है ! हाय ! मुझे तो यह सारा जनसागर सती सीता को कलंकित घोषित करनेवाले रजक का वंशज लगता है। खैर ! अब आप सबका जो आखिरी उत्तर हो वह दे दीजिए। जिससे कि मैं अपनी दिशा चुन सकूँ।"

मंदिर के पूजारी आदि एकत्र हुए । आवश्यक चर्चा के बाद आखिरी निर्णय से कालिपाद को अवगत किया गया कि वह गाँव के पंच से न्याय मांगे।"

पर गाँव के पंच ने जगन्नाथपुरी के बडे पंच से न्याय मांगने की सलाह दी।

कालिपाद अति तीव्र गति से जगन्नाथपुरी पहुँचा। पंच के समक्ष अपना पक्ष रखा। लेकिन विघ्नकर्ताओं ने पहले से ही उस पंच के कान भरे हुए थे। अतः पंच ने कालिपाद के लिये अन्यायकर्ता न्याय सुनाया कि कालिपाद वहाँ यवनों के यहाँ शुद्ध रह गया हो ,ऐसा नितांत असम्भव है। अपनी अशुद्धि को दूर करने के लिये पंच ने उसे तप्त सीसे का रस पीने की सजा फरमाता है।

कालिपाद को यह समझते देर नही लगी कि मंदिर के इन पूजारियों को अपनी मौत से कम कुछ भी स्वीकार्य नही है। अतः उसने कहा :"ठीक है,...मेरे लिये यह प्रायश्चित असम्भव है।"

"जा रहा हूँ। आप अपने मंदिरों की रक्षा करना। अपने हिन्दुपद को पकडे रहना। देखता हूँ अब क्या होता है।

"अब जब मैं यहाँ आऊँगा तब इस मंदिर को मस्जिद बनाऊँगा। पूजारियों को जनेऊवढ मारूँगा।उनके जनेऊ के असंख्य मनों ढेर कर दूँगा।"

कालिपाद सीधे ढाका के नवाब के पास गया। इस्लाम का स्वीकार किया तुरंत राज्य और

राजमणि का स्वामीत्व प्राप्त किया।

वह हिंदुओं का कट्टर दुश्मन हुआ। वह पूरजोर हिन्दू बस्तियों पर आक्रमण करता था कि उसका नाम "काला पहाड " के रूप में प्रचलित हो गया।

और एक दिन उसने जगन्नाथपुरी को ध्वस्त किया। हजारों पूजारियों को मौत के घाट उतार दिया। वह मुस्कुराता हुआ वापस लौटा।

## 5. अन्य के सुख के लिए कितना बड़ा त्याग!

दूसरे विश्वयुद्ध की यह घटना है। जापान अमरिका से पराजित हुआ। अनेक सैनिकों की मौत हो गई। उसमें जापान के किसी छोटे से गाँव का जापानी सैनिक की भी मौत हो गई थी। शत्रुपक्ष के अमरिकी सैनिक भी जापानी सैनिकों की अंत्येष्ठि में व्यस्त थे। उस वक्त उन्हेंने एक सैनिक को कराहते हुए देखा। "पानी ! पानी ! "उसके शब्द सुनकर अमरिकी सैनिक करुणार्द्र हो गया। उसने बहुत प्यार से पानी पिलाया। उस समय टूटते हुए शब्दों में जापानीज सैनिक ने कहा;"मेरे घर मेरा प्यारभरा स्नेह स्मरण पहुँचाना।" और तुरंत उसका प्राण पखेरु अनंत की यात्रा पर निकल गया।

सदभाग्य से उसकी जेब से एक डायरी मिली। उसमें से उसके घर का पता मिल गया। इस डायरी में अंतिम दिवसों की घटनाएँ इत्यादि था।

अमरिकी सैनिक ने सोचा कि जिसने अपने स्वजन को खोया है,उन स्वजनों के लिये इस डायरी के प्रत्येक पृष्ठ का पठन कितना उष्मापूर्ण हो जायेगा ! मुझे स्वयं वहाँ जाकर यह डायरी देनी चाहिये। इस प्रकार एक परिवार के आश्वासन में निमित्त होने का मुझे कैसा सुंदर सद्भाग्य प्राप्त होगा !"

तुरंत ही अमरिकी ने एक पत्र जापान लिखा। उसने लिखा कि आपके सैनिक-स्वजन का एक भी पत्र एक लम्बे अंतराल से नही प्राप्त होने के कारण आप उसकी तीव्र प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आज मैं आपको दु:खद समाचार दे रहा हूँ कि आपका वह प्रियतम स्वजन युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ है।

उसकी अंत्येष्ठि हम लोगों ने बहुत अच्छे से की है। उसकी पानी पीने की ईच्छा को मैंने पूर्ण किया है।

दूसरी बात यह कि उसने आप सब को प्यारभरा स्नेह स्मरण प्रेषित किया है। उसके बैग से मुझे उसकी दैनन्दिनी मिली है। उसे पढने के उपरांत मुझे यह महसूस हुआ कि यदि मैं यह डायरी आप तक पहुँचा दूँ तो आपको उसके अंतकाल के प्रत्येक घंटे के समाचार जानने को मिलेंगे। इससे आप बहुत उष्मित होंगे। अतः मैं इस आशय से कुछ ही दिनों में जापान की यात्रा करूँगा और ....तारीख सुबह दस बजे आपके गाँव आ पहुँचूँगा।"

जब यह पत्र जापान के उस गाँव के स्वजनों को मिला तब उसे पढने के लिये सब बहुत उत्सुक हो गये लेकिन स्वजन की मृत्यु के कारण सब छाती फट जाये ऐसा भीषण रुदन करने लगे। सारा गाँव वहाँ जमा हो गया। सबने उन सबको आश्वस्त करके शांत किया।

अब वे उसमें लिखे अनुसार तारीख की प्रतीक्षा करने लगे।

और जब उस दिन का सूर्योदय हुआ तब मात्र वह परिवर ही नही लेकिन दो हजार लोगों का जनसमूह –पूरा गाँव स्नानादि करके श्याम वस्त्रों में तैयार हुआ .ढोल-नगाडे बजाते हुए वे लोग ठीक नौ बजे गाँव के बाहर आ गये। दूर-सुदूर तक उनकी नजरें दौडने लगी और नवाआगंतुक को तलाशती रहीं।

ठीक दस बजे और वह सिपाही को कंधे पर थैला लटकाये तेज गति से चले आते हुए सब ने देखा।

"भाई ! भाई ! सुस्वागतम् "के नारों के साथ सारे गाँववासी उसका स्वागत करने एक ही साँस मैं दौड पडे। सब से मिले ,गले से लगाया।उस समय सबकी आँखों में आँसू थे।

युवाओं ने अपने अनुमानित भाई को ऊठा लिया। उसके चारोंओर घेरा बनाकर गाँववाले नाचने लगे। "कैसा परोपकारी ! कैसा अद्भुत इन्सान इस धरती का ! कैसा महान अमरिकी! सब के दिलों में यही शब्द ऊठते थे।

उसे सैनिक के घर लिवा ले गया। स्नान.भोजन आदि उचित औपचारिकाएँ संपन्न हुई। बाद में

सारा गाँव "भाई" के आसपास बैठ गया। अपने गाँव के शहीद सैनिक की बातें अंतिम क्षण तक की घटनाएँ विस्तार से बताई गई। प्रत्येक शब्द सुनकर हर सुननेवाले की आँखों से एक अश्रुबूंद टपकती थी।

अंतत: ग्रामजनों को उस अमरिकी को बिदाई देनी पडी। वह भी बिदा होने की जिद के साथ खडा हुआ। शहीद के स्वजनों को माता-पिता से लेकर सबकी आँखों के आँसू पोंछते हुए उसने सबको भरसक आश्वासन दिया। बाद में उसने कहा:"अब मैं आपको अपने प्रिय की डायरी दे रहा हूँ। उसके बाद जो भी करुणार्द्रता बहेगी ,उसे देख-सह पाने का साहस मुझमें नही है। अत: मैं अब यहीं से बिदा ले रहा हूँ। ऐसा कहकर उसने शहीद के पिता के हाथ में डायरी रखी। सबने उसे भावपूरित बिदाई दी।

दिये के प्रकाश में डायरी के अंतिम पृष्ठ पर लिखित आखिरी जानकारी पाने के लिये सबसे पहले आखिरी पृष्ठ को खोला गया। सब बडी अधीरता पूर्वक सुनने लगे।

उसमें अंतिम परिच्छेद था :"ओ मेरे प्रिय स्वजनो ! डेडी,मम्मी,प्रियतमा ! बच्चे ! आप सबकी याद मुझे बडी सता रही है। अभी मैं युद्धभूमि में हूँ। मुझे ५ डिग्री सख्त बुखार है। मैंने अपनी शारीरिक अस्वस्थता की बात करके साहब से छुट्टी मांगी पर नही मिली। मैं मातृभूमि की रक्षा के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ। अभी पानी पीने की तीव्र प्यास लगी है। मुझे अति प्रिय चावल खाने का मन कर रहा है,पर जहाँ पानी का भी ठिकाना नही है वहाँ मुझे चावल कौन देगा ?कोई बात नही। यह युद्ध खत्म होते ही मैं घर लौटूँगा। हम सब मिलकर खायेंगे।"

बस....वजह चाहे कोई भी हो पर डायरी वहाँ से आगे नही बढ सकी।

ये अंतिम शब्द सुनकर सब सिसकियाँ लेकर रोये। .शहीद की माता खडी हुई। उसने तुरंत चावल पकाया। अपने लाडले की तसवीर के समक्ष रखा और बोली :"बेटा ! यह रहा चावल। लो खा लो,हम रोज तुम्हें चावल खिलायेंगे।"इतना कहकर पश्त हिम्मत हुई प्रिय माँ धरती पर पछाड खाकर गिरी।

उस दिन से रोज सारे स्वजन इकट्ठा होकर अपने प्रियजन की तसवीर के आगे चावल रखकर एक अकल्प्य और अवलोकनीय आश्वासन सदैव पाते रहे हैं।

# 6. निमित्त कैसे पटक देते हैं।

वसंतपुर के राजा सिंहसेन के दो बेटे थे। सराक और भसक। एक बिटिया थी-सुकुमालिका।

ये दोनों भाई सहस्त्रयोधी थे : एकहजार योद्धाओं से दोनों भाई अकेले ही टक्कर लेने का सामर्थ्य रखते थे।

आचार्य धर्मघोषसूरिजी के सत्संग से दोनों भाइयों को संसार के प्रति विराग भाव हुआ। उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। मुनिजीवन के कुछ ही बरसों में वे बहुत अच्छे विद्वान हुए। प्रभावक धर्मोपदेशक हुए। उनके मन में अपनी बहन –राजकुमारी सुकुमालिका को संसार से विरक्त करके साध्वी बनाने की भावना जागृत हुई। गुरुजी के पास प्रस्ताव रखा। गुरुदेव ने आशिष पूर्वक वसंतपुर की दिशा में विहार करने की अनुमति प्रदान की।

मुनिबंधुओं को उस कार्य में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। राजकुमारी सुकुमालिका अब साध्वी सुकुमालिकाजी हुई।

किसी प्रचण्ड पुण्य के कारण वह अतिशय रूपवान थी। उसमें अब साध्वीजीवन के तप का आध्यात्मिक तेज जुडा।

जैन साधु और साध्वी अल्पावस्था में छोटे या बडे सारे प्रति छह माह अपने माथे के बाल अपने हाथ से लोच करते हैं - (खींच निकालते हैं)। उसके पीछे अनेक कारणों में सौंदर्यरहित अवस्था की प्राप्ति भी एक वजह है।

हाँ, इससे काया को अधिक कष्ट होता है पर सौंदर्य की मोहकता द्वारा ब्रह्मचर्य के भंग तक जीवन पहुँच जाये तो नरकों तक की दुनिया के भव-भव के भयानक कष्टों की समस्या इतनी बडी हो जाती है कि उसके निरसन के लिये यह कायाकष्ट अनिवार्य और स्वागतयोग्य हो जाता है।

छाछ और घी-दो में से किसी एक का त्याग करना पडे तो छाछ ही छोडनी होती है।

देह और आत्मा में से किसी एक की उपेक्षा यदि करनी ही पड जाये तो देह की ही उपेक्षा करनी होती है परंतु केशलुंचन कराने पर भी साध्वी सुकुमालिकाजी के अपार सौंदर्य में ऐसा कोई बडा भाटा

तो आया ही नही। उपरांत उनके पास अति मधुर कण्ठ था। जब भी वे प्रभुभक्ति आदि करें तब उन्हें सुनने के लिये सारे स्त्री-पुरुष दौडे चले आते थे।

इन दो पुण्यों के उदय से उनकी चारों ओर युवाओं का जमावडा होने लगा।

क्या विहार में ?क्या रात में, मधुर कण्ठ से स्वाध्याय करने में या संघाय प्रतिक्रमण या प्रभुभक्ति के स्तवन आदि का गायन करने में...हर परिस्थिति में उनकी रूपराशि और स्वर की तीव्र मोहकता के कारण बडी तादाद में युवाओं का जमावडा होने लगा।

इससे साध्वीजी ने सावधानी बरती। ब्रह्मचर्य भंग की सम्भावना की –यहाँ तक कि बलात्कार से भी की उन्होंने कल्पना कर ली। उन्होंने रूप की तीव्रतम मोहकता को तोडने के लिये घोर तप के पथ पर आगे बढने का निर्णय किया। गुरु से आज्ञा प्राप्त कर ली। अब उनके पास शरीर को सोखकर भी आत्मा को अनिष्ट की सम्भावना से बचा लेने के अतिरिक्त कोई चारा नही था।

कुछ समय लगातार घोर तप हुआ। शरीर महदांश क्षीण हो गया। हाँ...उसी वक्त जीवन की हो रही सुरक्षा से उनका मन और अधिक प्रसन्नता अनुभव कर रहा था।

एक दिन आकस्मिक ही भाई-बहन मुनियों का एक नगर में मिलन हुआ। बहन साध्वीजी ने मुनिबंधुओं से अपनी अंतिम ईच्छा –अनशन द्वारा जीवन का आनंदयुक्त अंत करने की ईच्छा व्यक्त की। उस समय उपस्थित रहकर मन को समाधिस्थ रखने के लिये सहायक होने की बिनति की।

मुनिबंधुओं को लगा कि अब उसके बिना शीलरक्षा का कोई उचित उपाय नजर नही आ रहा है। अतः दोनों ने सम्मति प्रदान की।

आजीवन अनशन का आरम्भ हुआ। दिवस दरमियान मुनिबंधु साध्वीजी के चित्त को समाधिमय रखने के लिये अनेक प्रकारी श्रवण कराते थे। साध्वीजी भी आत्मानंद में तन्मय होकर जीवन के अत्यंत सुमधुर अंत की ओर जा रही थीं।

पर कर्म का अकल खेल समझ से परे होता है। किसीको कल्पना तक नही थी कि साध्वीजी का

यकायक पतन होनेवाला है और वे संसारी जीवन जीनेवाली हैं।

घटना कुछ यूँ घटी। कुछ दिन बीतने के बाद अचानक एक दिन साध्वीजी की आँखें फट गईं। नाडी हाथ में नही आ रही थी। अतः गुरुजी ने मुनिबंधुओं से कहा कि साध्वीजी कालधर्म को प्राप्त हुई हों ऐसा लगता है। साध्वीजी के दुर्भाग्यवश कालधर्म प्राप्ति का निर्णय लिये जाने पर उनके शरीर को जंगल में विधिपूर्वक रख देने का कार्य साध्वीजियों ने संपन्न किया। इस विधि को "महापारिष्ठापनिका" विधि कहा जाता है। आजकल इसके स्थान पर अग्निसंस्कार की प्रथा चल रही है।

कुछ घंटों बाद बन की शीतल वायु के स्पर्श इत्यादि के कारण साध्वीजी ने पुनः होश सम्हाला। चारोंओर दृष्टिपात करके वे सोच में पड गई कि "मैं कौन ?कहाँ से आई ?मुझे क्यों मेरे गुरूओं आदि ने छोड दिया ! आदि अनुत्तर सवाल उनके मन में ऊठने लगे।

उसी वक्त वहाँ से थोडी दूर पडाव रखे दो लोग वहाँ जा पहुँचे। उनके साथ सैंकडो लोग पानी की तलाश में निकले थे। उन्होंने इस स्त्री को देखा। इस स्थिति जनित उसकी सुंदरता को देखकर दोनों दंग रह गये।..यदि इस सुंदरी को अपने सेठ को भेंट के रूप में दिया जाये तो सेठ बडा ईनाम देंगे। ऐसा सोच-समझकर वे फटाफट सार्थवाह के पास गये। सारी बात कहकर तुरंत उन्हें साध्वीजी के पास ले आये।

उन्हें देखकर सार्थवाह भी अत्यंत आश्चर्यमुग्ध हो गया।"सुंदरी ! तुम्हारे वस्त्र पर से ऐसा लगता है कि तुम जैन साध्वी हो। तुम्हें तुम्हारे साध्वीसंघ ने यहाँ अकेले क्यों छोड रखा है। खैर ...जो हुआ सो हुआ,तुम मेरे साथ चलो। मुझे तुम अपना दूधभाई समझना। तुम मेरी बहन हो। चलो,मेरे घर चलो। मुझे सबसे पहले तुम्हारे स्वास्थ्य की देखभाल करनी है।"

लाचार होकर ,कर्मों को कोसती हुई साध्वी सार्थवाह के वश हुई। उसके घर गईं। सच में सगे भाई-बहन का उनका व्यवहार कुछ महिनों तक सम्पूर्ण दोष रहित रहा लेकिन एक दिन वह कातिलाना मनहूस क्षण आ गया। बहुत प्यार से दोनों एकदूसरे को खिलाते थे। उसी स्नेह ने एक दिन सार्थवाह की बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। बहन सुकुमालिका उसके अति राग के वश हुई। सुकुमालिका ने कर्मों

को दोषित ठहराकर सार्थवाह की पत्नी सुकुमालिका के रूप में जीवन शुरू किया।

अनेक बरस बीत गये। अब तो सुकुमालिका की अंतरात्मा जल रही थी कि एक दिन उसकी हवेली के नीचे से दो मुनियों को गुजरते हुए देखा। दासी द्वारा मुनियों को भिक्षा का लाभ देने के लिये बुलाया। मुनिद्वय भिक्षार्थ गये। अत्यंत भावपूर्वक उनके भिक्षापात्रों में लड्डू रखना शुरू किया।

मुनियों को अपनी सगी बहन देखने को मिली इसलिये निर्दोष भाव से उसकी तरफ टकटकी बांधकर देखने में वे गफलत कर गये। भिक्षापात्र पूरा भर गया फिरभी "बस कीजिए" इतना भी उन्होंने नहीं कहा। अतः सुकुमालिका ने उनकी ओर देखा तब उसे पता चला कि यह मुनिद्वय उसकी ओर एकाग्र भाव से देख रहे थे।

और...इसी लिये उसकी आत्मा क्रोध से जल ऊठी। उसने कहा ,"ओ मुनिओ ! यह समस्त पुरूष जाति इतनी अधम होगी कि वह स्त्री के रूप के पीछे पागल होती है। आप मुनि हुए फिरभी आपकी ऐसी कंगाल और हलकट मनोदशा है ! आप लोगों ने हमारे जैसी कई नारियों के शील को चुर-चुर कर दिया होगा ?

"हाय ! मेरा जीवन भी कैसा कलंकित हो गया ! कहाँ मैं वह साध्वी सुकुमालिका और कहाँ अब सार्थवाह की पत्नी !"

यह शब्द सुनते ही मुनिबंधु तो स्तब्ध रह गये। अब यदि खुलासा न करे तो अनावश्यक रूप से जैन साधुओं की निंदा होगी। इसलिये उन्होंने कहा," बहन ! हमारे विषय में कुछ गलत न सोचें। हमने आपकी ओर एकाग्र नजर से देखा है,यह हमारी भूल है। ऐसा कहकर हम कोई बचाव नही रख रहे हैं पर ऐसा होने की वजह यह थी कि आपके स्वरूप में हमें हमारी सगी बहन सुकुमालिका के दर्शन हुए। इसी लिये हम आप में उस बहन के दर्शन करने में लीन हो गये। अहा ! कैसी धन्य हो गई वह साध्वी सुकुमालिका नामक हमारी बहन ! शीलरक्षा के लिये अनशन करके अपने जीवन का अंत कर दिया !"

मुनियों के ये शब्द सुनकर सुकुमालिका ने उन मुनियों की काया की ओर ध्यान से देखा। उसे भी विश्वास हो गया कि मुनिजीवन की कठोर जीवनचर्या से शारीरिक रूप से कृश हो जाने के कारण नही पहचाने गये, ये मुनि अपने सगे भाई-मुनि ही हैं। सच्चाई जानने के लिये अभी घटस्फोट न करते हुए

उसने मुनियों से कहा कि-"आप मुझे उस साध्वी सुकुमालिका का सम्पूर्ण जीवन वृत्तांत सुनाओ।" मुनियों ने महापारिष्ठापनिका की विधि तक की सारी बात बताई। जैसे ही बात खत्म हुई कि चीखती हुई,जोर-जोर से रोते हुए सुकुमालिका ने कहा ,"हे मुनिबंधुओ ! तो अब सुनो कि तुम्हारी सगी बहन,कमनसीब सुकुमालिका मैं स्वयं हूँ। मैं मरी नही थी अपितु ..."उस प्रकार उसने अपना समस्त जीवन वृत्तांत बताया।

साध्वी सुकुमालिका के जीवन की यह पतनयुक्त करुणासभर घटना सुनकर मुनिबंधुओं ने अत्यंत दुःख अनुभव किया। अन्यत्र गये सार्थवाह जब वापस लौटा तब मुनिबंधुओं ने उसे बोधित किया और अपनी बहन को वापस पाया। उसे पुनः दीक्षा प्रदान की। सार्थवाह ने ही उसकी दीक्षा बडे ठाट से की।

पुनः साध्वी बनी सुकुमालिका ने घोर तप करके दोषों का प्रायश्चित किया और उसी भव में आत्मकल्याण किया।

## 7. सत्य की प्राप्ति के लिए बहुत त्याग करना पड़ता हैं।

किसी नगर में जुआखाना था। सेठ और एक नौकर दो लोग यह जुआखाना चलाते थे। नौकर का नाम होब्स था। किसी गलती की वजह से सेठ ने उसे नौकरी से हटा दिया। इतने से भी सेठ को संतोष नही हुआ। उसे यदि और सताया जाये तो जुएखाने में पनपे देशद्रोही कार्यों को वह बेनकाब न करे।

इस लिये सेठ ने होब्स के खिलाफ कोर्ट में मुकदमा दर्ज करवाया। दो लडकियों को अपनी साक्षी के रूप में रखा। कोर्ट में ऐसी पेशकश की गई कि होब्स को नौकरी से निकाल दिये जाने के कारण गुस्से में आकर सेठ की जान लेने की जालसाजी की थी। जिसे सेठ ने बेपर्द कर दिया था। होब्स ने डाइनेमाईट रखा था।

उसकी पेटी के साथ तार बांधा था। सेठ के वहाँ से गुजरते ही वह तार उनके पैरों में उलझ जाये कि तुरंत डाइनेमाईट के फटते ही सेठ खत्म हो जाये।

सेठ ने पुलिस को अपने अनुकूल कर लिया था और उसके द्वारा यह बताया गया कि यह जाल बिछाकर होब्स कुछ दूरी पर पेड के नीचे चूपचाप खडा था।

दो गवाहों ने कहा कि उन्होंने उस स्थिति में होब्स को देखा था।

इस प्रकार कोर्ट में पेशकश की गई। कोर्ट ने आरोपी होब्स को अपना वकील नियुक्त कर जवाब तैयार करने के लिये तारीख दी।

होब्स तो नितांत निर्दोष था। वह बहुत घबडा गया। उसके पास वकील को देने के लिये पैसे तक नही थे।

यह समाचार अखबारों में चमके। नगर के एक ख्यातनाम वकील ने उस हकीकत को ध्यान से पढा। उसे लगा कि पैसों के जोर पर वह सेठ निर्दोष नौकर को भारी तकलीफ में डाल रहा है।

"ऐसा तो होना ही नही चाहिये।" वकील ने मन ही मन कहा,"मैं होब्स का वकील बनूँगा।"

दूसरे दिन कोर्ट के खुलते ही वकील ने होब्स के वकील के रूप में वकालतनामा करवा लिया।

होब्स से सारी सत्य हकीकत प्राप्त कर ली।

एक दिन मुकदमा चला। फरियादी की ओर से सारी पेशकश हो जाने के बाद होब्स के वकील ने जिरह करना शुरू किया। आखिर में दो गवाह लडकियों की जिरह शुरू हुई।

होब्स के वकील के रूप में ख्यातनाम वकील के जुडने से सारे नगर में सनसनी मच गई। सेठ के लिये अब बहुत बडा प्रश्न खडा हो गया होने से मुकदमे की सुनवाई के वक्त नगर के सैंकडो लोग बील में उमडी चिंटियों की तरह कोर्ट में उमड आये थे। सभी वकील की जिरह सुनने के लिये चौकन्ने हो गये थे।

वकील येन केन प्रकारेण सेठ का भण्डाफोड कर देना चाहते थे। कहीं तो वे एकाध झूठ को भी पकडने के लिये वे जिरह में कुछ न कुछ पूछने लगे थे पर अभी तक ऐसी कोई कडी पकड में नही आ

रही थी। इसमें यकायक वकील का सद्भाग्य काम आ गया।

दोनों लडकियों से पूछा कि "आपने सेठ के कम्पाउण्ड में वृक्ष की आड लेकर होब्स को जो खडा हुआ पाया था ,तब कितने बजे थे ?"

साक्षियों ने कहा "दोपहर लगभग ढाई बजे का वक्त था।"

"क्या आप दोनों उस वक्त वहाँ से गुजर रही थीं ?" –वकील ने पूछा।

"जी हाँ।"साक्षियों ने बताया।

"अच्छा क्या आप अब यह बता सकती हैं कि उससे पहले आप कहाँ थीं ?"-होब्स के वकील ने पूछा।

हाँ...हम इससे पूर्व चर्च में थीं। वहाँ से बाहर निकलते वक्त चर्च की पायदान पर साथ खडे रहकर हमने फोटो भी खींचवायी थी।"

वकील ने कहा:"बहुत बढिया ,क्या वह फोटो मुझे देखने के लिये मिल सकती है?"

साक्षी ने फौरन वह फोटो जेब से निकालकर होब्स के वकील को दिया। वह फोटो देखकर वकील की आत्मा कहने लगी कि -"मेरी विजय में यह फोटो निमित्त होगी। कैसे ! यह तो मुझे भी नही मालूम।"

वकील ने वह फोटो चौबीस घंटे के लिये घर ले जाने की अनुमति कोर्ट से प्राप्त कर ली। आज कोर्ट को मुलतवी करने की सफल बिनति भी की।

घर जाकर पुनः स्वस्थता धारणकर वकील रात्रि के आठ बजे आरामकुर्सी पर फोटो लेकर बैठे। अंतरात्मा कह रही थी कि "तुम्हारी विजय की कडी इसी फोटो में छिपी है।"

वकील लगातार आठ घंटे तक उस फोटो को देखते रहे पर कोई भेद हाथ नही लगा।

एकाएक घडी में ठीक चार का गजर होते ही वकील कुर्सी से खडे हो गये। खुशखुशाल होकर स्वतः बोलने लगे ,बस...बस...इसके आधार पर ही मैं उनको "झूठा" साबित कर दूँगा।

वकील यथासमय कोर्ट पहुँच गये। नामदार कोर्ट से बिनति की कि वह फोटो कितने बजे खींची

गई है ,उसका निर्णय किया जाना चाहिये ।

फोटो में पायदान के बगल में कंटिली बाड थी । उस बाड की प्रतिच्छाया पायदान पर पड रही थी। इस परछाईं से समय का निर्णय हो सकता था ।

कोर्ट ने नगर के श्रेष्ठ फोटोग्राफर को बुलाकर परछाईं पर से उसका चौकस समय सुनिश्चित कर देने का आदेश दिया ।

फोटोग्राफर ने विविध समय के अलग अलग फोटोग्राफ्स लिये । उसमें जो चार बजे ली गई फोटो थी, उसकी परछाई की लंबाई और साक्षी की फोटो में दिखाई देनेवाली परछाई एकसमान आ रही थी ।

उसके आधार पर उसने फोटो खींचे जाने का समय चार बजे का घोषित किया ।

साक्षियों ने तो ढाई बजे का समय बताया था । अतः वे झूठी साक्षी साबित हुईं । अतः सारा मुकदमा गलत सिद्ध होने के कारण कोर्ट से निकाल दिया गया । होब्स बच गया ।

ख्यातनाम वकील के पैरों में गिरकर सिसकियाँ लेकर रोते हुए होब्स ने वकील का भारी अहसान स्वीकार किया ।

वकील ने कहा ,"संपत्ति के जोर पर गरीबों को कुचनेवाले एक अमीर को मैंने सबक सिखाया है ।

मुझे इस बात की आज खुशी अधिक है ।सत्य के अन्वेषण के लिये रातें जागते हुए बीतानी पडती हैं और भारी परिश्रम करना पडता है ।

चाय की चुस्कियाँ लेते हुए बतियाते हुए आध्यात्मिक रातों की प्राप्ति हो जाये यह कदापि सम्भव नही है।

# 8. अशुभ निमित्तों की अप्रतिम ताकत

जन्म-जन्मांतरों में संचित अशुभ संस्कारों का बारुद शांत पडा हो पर यदि उसमें अशुभ निमित्तों की एक चिनगारी भी पड जाये तो उसे फटने में तनिक भी देर नही लगती।

हजारों बरस के तप,जप और संयम की साधनाओं के बडे-बडे भवन क्षण में जलकर खाक हो जाते हैं।

पुराने जमाने में गगनवल्लभ नामक एक नगर था। उस नगर में विद्युन्माली तथा मेघरथ नामक दो भाई रहते थे। अलग अलग विद्याओं को सिद्ध करने की साधना करने का उन्हें भारी शौक था। एतद्विषयक ग्रंथ वे नियमित रूप से सदैव प्राप्त करते थे और भाँति-भाँति की विद्याएँ जान को जोखिम में डालकर भी वे सिद्ध करते थे।

एकबार किसी ग्रंथ में दी गई एक विद्या को सिद्ध करने का निर्णय किया। उस विद्या का जाप उन्हें एक वर्ष तक रोज आठ घंटे करना था। उसका आम्नाय (रुढि) यह था कि किसी चाण्डाल कन्या से शादी करना। एक वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करना। यदि कामवासना जागृत हो तो उस समय अशुचि आदि भावनाओं का भावन करते हुए वासनाओं को शांत किया जाये।

दोनों भाई दूरस्थ किसी अज्ञात नगर के चाण्डालवास में गये। उनके अतिरूपवान होने के कारण सारी चाण्डाल स्त्रियाँ जमा हो गईं। वहाँ के बडे-बुझुर्गों ने उनके आगमन का कारण पूछा तो बताया कि "मातापिता से झगडा हो जाने के कारण हमने गृहत्याग किया है। अब हमें कहीं रहना है। शादी करनी है और विद्यासिद्धि के लिये एक वर्ष के पूर्ण ब्रह्मचर्यपालन के साथ जप करने हैं।"

यह सुनकर उन्हें अपना घरजमाई बनाने के लिये बुझुर्गों में मानों होड लग गई। सबको लगा कि ये लोग जिन दो कन्याओं के पति होंगे,उन कन्याओं के सौभाग्य से देवियाँ भी ईर्ष्या करेगी। अंततः दो कन्याओं को पसंद किया गया।

दोनों का वर्ण श्याम था। उपरांत एक के दांत बाहर निकले हुए थे तो दूसरी कानी थी। दोनों अनहद कुरूपा थीं। दो युवाओं को अब्रह्म की वासना जागृत होना चाहे तो भी न जगे ऐसी ये कुरूपा

और काली कलूटी कन्याएँ थीं। शरीर भी बेडौल था। दोनों के शरीर से अनवरत दुर्गंध आती रहती थी।

साधना का एक वर्ष पूरा हुआ। छोटे भाई मेघरथ ने सौ प्रतिशत सफलता प्राप्त की। वह अपनी झोंपडी से निकलकर बडेभाई विद्युन्मालि के पास गया। वह उनकी सफलता के बारे में जानने के लिये समुत्सुक था।

बडेभाई ने उससे कहा कि उसे सरेआम निष्फलता मिली है। हुआ यूँ कि चार महिने पर्यंत तो साधना निर्विघ्न सुंदर रूप से चली लेकिन उस दिन सख्त शरदर्द होने के कारण पत्नी को स्पष्ट ना कहने पर भी उसने माथा दबाना शुरू किया और आगे चलकर अब्रह्म का सेवन होने से पतन हुआ। पत्नी ने गर्भ धारण कर लिया।

मेघरथ ने गहरा निःश्वास छोडा। उसका मन बोल ऊठा :"अरे बडेभैया ! ऐसा तो क्या हुआ था इस चाण्डाल कन्या में कि आपने होश गँवा दिया ?हाय ! काली और कानी में आपका पतन हो गया। अब मेघरथ ने बडेभैया को घर आने के लिये कहा तो तब उसने कहा कि "मैं तुम्हारी गर्भवती भाभी को छोडकर कैसे आ सकता हूँ ?अब तुम जाओ अब मैं मन को कडा करके पुनः विद्यासाधना करूँगा तुम मुझे एक बरस के बाद लेने के लिये आना।"

"मैं तुम्हारी गर्भवती भाभी को छोडकर कैसे आ सकता हूँ ?"- बडे भैया के शब्दों से निसृत काम-वासनाजनित भावना को पकडकर मेघरथ की आत्मा काँप ऊठी। वह फौरन वहाँ से बिदा हो गया। वर्ष के अंत में मेघरथ पुनः बडे भैया के पास गया।

जैसे ही वह झोंपडे में प्रविष्ठ होता है कि भाभी द्वारा बडेभैया को दी जा रही ऊलाहना के शब्द उसे सुनाई पडते हैं।"रोते हुए बच्चे को शांत करना भी नही आता है तो जन्म क्यों दिया ?लोग तो रूपवान पति मिला होने की वजह से मेरे भाग्य की ईर्ष्या करते हैं। पर ऐसा नादान और अज्ञ पति मेरे किस काम का ?" बालक का रुदन, दुर्गंध मार रही झोंपडी, कानी और काली कलूटी पत्नी आदि को देखते-सुनते मेघरथ के कदम झोंपडी के बाहर जमीन से जड गये।

मन को समझाकर वह झोंपडी में गया। प्रणाम करते हुए उसने घर चलने के लिये कहा।

बडेभैया ने कहा,"मेरी विद्यासाधना पुनः निष्फल हुई है। तुम्हारी भाभी ने पुनः सगर्भा हुई है।

पहले बच्चे को सम्हालना मुझे ठीक से नही आता इसलिये वह मुझे कोस रही है। तुम्हें भी अभी पता चला होगा। अब तो मैं विद्यासाधना को छोडकर बच्चे को बडा करने के काम में लग गया हूँ। क्या किया जाये ?"

भाई के प्रत्येक शब्द में कहीं भी दु:ख या अफसोस नजर नही आया। स्वर्ग की सुंदरियों को भी म्हात कर दे ऐसी रुपसियों को प्राप्त कर सकनेवाला भाई जुगुप्सा प्रेरक स्त्री का पति बनकर उसके मोह में पागल हो गया है। यह जानकर मेघरथ को भारी ठेस लगी।

उसका दिल टूट गया। बडेभैया को उसके हाल पर छोड देना ही उसे उचित लगा।

और...कुछ भी बोले बिना मेघरथ ने घर की राह ली। वह वाक्य याद आ रहा है :

"नींद न देखे टूटी खटिया ,ईश्क ने देखे जात-कजात।"

## 9. हर बात में जी हुजूरी नहीं चलती

उल्लूदास के मित्र का नाम रामदास था। रामदास ने बडी बाडी बनायी। उसमें से उसे अच्छी आमदनी होने से खाने-पीने के उपरांत जो कुछ भी बच जाता था उसका निवेश करने के लिये उसने अनाज की दुकान शुरू की।

एक दिन कोई पुलिसवाला रामदास की दुकान गया। उसने कुछ अनाज मुफ्त में मांगा। रामदास ने अनाज मुफ्त में देने से इनकार किया तो पुलिसवाले ने उसके साथ गाली-गलौज किया। रामदास भी कोई कच्चा खिलाडी नही था। उसने पुलिसवाले को दो गालियाँ दी। इसलिये पुलिसवाले ने रामदास को जोर से चाँटा जड दिया। अब रामदास अत्यंत क्रोधित हो गया था। उसने पुलिस की गरदन पकडकर दो चाँटे रसीद कर दिये।

अत: पुलिस ने सीटी बजायी तो निकटस्थ पुलिस स्टेशन से पाँच पुलिसवाले दौडे चले आये।

सबने मिलकर रामदास की बहुत पीटाई की।

पुलिस तो चली गई पर रामदास को चैन नही पड रहा था। उसने बहुत विचार किया। उसे लगा कि इस सारे क्लेश की जड में यह बाडी है। बाडी हुई तो मुनाफा हुआ। मुनाफा हुआ तो दुकान खोली। दुकान खोली तो पुलिस आयी और मारामारी हुई और बूरी तरह से मार खानी पडी। बस...अब तो घासलेट छिडककर बाडी को जला ही दूँ।"

और...तुरंत ही उसने जो नही करना चाहिये वह कर दिया। कुछ ही समय में बाडी जलकर खाक हो गई। पर...जब रामदास की समझ में बात आयी कि उसने तो अपनी जिंदगी को ही संकट में डाल दिया है। जीविका का जो साधन था,उसका नाश करके बैठने की डाली को ही काट डाला पर अब वह करता भी क्या ?जब वह अपने शिर पर हाथ धरकर अत्यंत उदास होकर दुकान पर बैठा था उसका मित्र उल्लूदास दुकान पर आया। रामदास के चेहरे पर खिन्नता देखकर उसने पूछा कि रामदास ! क्यों ठीक तो हो ?"

रामदास ने उसे जवाब देते हुए कहा कि ;"अरे क्या खाक मजा ! प्रिय मित्र उल्लूदास ! तुम्हें तो मालूम ही होगा कि मैंने एक बाडी जमायी थी।

उल्लूदास ने कहा;"हाँ...हाँ ...मैं तुम्हारा जिगरी दोस्त हूँ। क्या मुझे इतना भी मालूम नही होगा ?"बाडी तो बनानी ही चाहिये। इसमें कुछ भी गलत नही। तुम्हारे जैसा कुशल आदमी बाडी नही बनायेगा तो और कौन बनायेगा ?"

रामदास ने कहा;"पर तुम मेरी बात सुनो।उस बाडी में पहले ही वर्ष चीकु,मौसंबी,संतरे आदि फलों का बडा अच्छा फसल उतरा।"

"अरे यह तो होना ही था। बीज बोओगे तो फल तो आयेंगे ही। तुम्हारी बात ठीक है। "उल्लूदास ने कहा। पर उससे प्राप्त भारी मुनाफे को निवेशित करने के लिये मैंने अनाज की दुकान शुरू की।"रामदास ने कहा।

उल्लूदास : "हाँ ! दुकान तो करनी ही चाहिये। ऐसे तगडे मुनाफे को सुरक्षित करने के लिये दुकान तो करनी ही चाहिये।"

रामदास ने कहा :"कल इस दुकान पर एक पुलिसवाला आया।"

दुकान है तो पुलिस सामान खरीदने के लिये भी आयेगी ही।"-उल्लूदास ने कहा।

रामदास :"उसने मुझे मुफ्त में सामान देने के लिये कहा।"

उल्लूदास : "वह तो ऐसा ही कहेगा न। पुलिस तो होती ही है ऐसी ! वह कहीं पैसा-वैसा नही देगी। मुफ्त में ही सामान मांगेगी।"

रामदास : "पर मैंने तो उसे मुफ्त में सामान देने से इनकार कर दिया।"

उल्लूदास : "ना ही कहनी चाहिये ना। ऐसे थोडे ही सामान मुफ्त में दे दिया जाता है ? ऐसा करेंगे तो कुछ ही महिनों में दिवाला पीट जायेगा।"

रामदसास : "ना सुनकर पुलिसवाला तो गुस्सा करने लगा।"

उल्लूदास :" बिलकुल सही बात है। हम यदि मुफ्तखोरी को बढावा नही देंगे तो पुलिसवाले को तो गुस्सा होना ही है। वैसे भी उसका माथा तो चौबीसों घंटे गर्म ही रहता है।"

रामदास : "बाद में उसने मुझे गाली दी।"

उल्लूदास : "वह तो गाली ही देगा ना ! उसकी मनमरजी न हो तो अपने माथे की गरमी के कारण गाली ही देगा।"

रामदास : "बाद में मैंने उसे दो गालियाँ सुनायी।"

उल्लूदास : "तो देनी ही पडे ना। हम कोई कच्ची मिट्टी के थोडे ही हैं ?"

रामदास : "बाद में उसने मुझे चाँटा मारा।"

उल्लूदास : "वह तो मारेगा ही ना ?हम दो गालियाँ सुनायेंगे तो वह थोडे ही सह लेगा। चाँटा मारेगा ही।"

रामदास : "बाद में मैंने उसे दो चाँटे जड दिये।"

उल्लूदास :"दो चाँटे हमें उसे जमाने ही चाहिये। हम कोई ऐसे वैसे थोडे ही हैं ?"

रामदास : "फिर उसने सीटी बजायी।

उल्लूदास : "अरे ! तुम भी कैसे आदमी हो ?उसके पास सीटी होगी तो वह सीटी ही बजायेगा ना ! सीटी कोई उसकी शोभा बढाने के लिये थोडे ही रखी गई है ।"

रामदास : "बाद में तुरंत पांच पुलिसवाले दौडे चले आये ।"

उल्लूदास :"वे तो आयेंगे ही ना ! एक दूसरे के दोस्त जो ठहरे ,फिर क्यों न आते ?"

रामदास : "उन सब ने मिलकर मुझे बहुत पीटा ।"

उल्लूदास :" तो पिटाई तो करेंगे ही । तुमने पुलिसवाले को चाँटा जड दिया तो क्या वे तुम्हें नही पीटेंगे?"

रामदास : "उनके चले जाने के बाद मुझे बडा गुस्सा आया ।"

उल्लूदास : "गुस्सा तो क्यों नही आयेगा । गुस्सा तो मर्द के जोश का एक स्वरूप है ।"

रामदास : "सारे कलह की जड यह बाडी है -मेरे मन में ऐसा विचार आया ।"

उल्लूदास : "तुम्हारी बात सच है । उपरांत जब मन है तो विचार तो आयेगा ही ।"

रामदास : "बाद में मैंने तो कलह की जड ऐसी बाडी को घासलेट डालकर जला दिया।"

उल्लूदास : "हाँ ऐसा ही करना चाहिये ।"कलह की जड को तो निर्मूल कर ही देना चाहिये ।"

रामदास : "पर अब मुझे आजीविका की बहुत चिंता हो रही है ।"

उल्लूदास :तुम्हारी चिंता में दम है । बाडी तो रही नही । अतः अब आजीविका के लिये क्या किया जाये ?"यह तो प्राणप्रश्न है ।"

रामदास :" अब तो मुझे मरने का विचार आता है ।"

उल्लूदास : तुम्हारा विचार एकदम सही है । भूखे रहकर कैसे जिया जा सकता है ? तो भीख भी कैसे मांग सकते हैं ?"इससे तो बेहतर है कि मर ही जाया जाये ।"

बेचारा रामदास ! उल्लूदास की बातें सुनकर बहुत घबडा गया । ऐसे जी हुजुरी करनेवालों से तो बचकर ही रहना ।

# 10. प्रायश्चित रहित पाप की भयावहता

अनार्यदेश के राजा का वह सब से बडा कुमार। नाम था –आर्द्रकुमार।

जहाँ "धर्म" शब्द सुनने को भी न मिले ऐसे देश को अनार्य देश कहा जाता है।

किसी सद्भाग्यवश आर्यदेश के मगध के महामंत्री अभयकुमार को आर्द्रकुमार से मैत्रीसेतु रचित हुआ। एक बार अभय ने आर्द्र को भगवान जिनेश्वर देव की प्रतिमा उपहार स्वरूप भेजी।

आर्द्र के हाथ में उस प्रतिमाजी के आते ही उसके रोम रोम से अकथ्य आनंद की धारा वर्षित होने लगी।

कुछ समय तक टकटकी बांधकर देखते हुए आर्द्र को अपने पूर्वभव की स्मृति रूप जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसे निम्न लिखित भव देखने को मिला। –

वह स्वयं किसान था। उसका नाम सामयिक था। उसकी पत्नी का नाम बंधुमती था।

धर्मघोषसूरिजी की देशना के श्रवण से संसार से विरक्त होकर इस दंपति ने एक साथ जैन दीक्षा ग्रहण की थी।

कई वर्ष बाद दोनों का मुनि समुदाय से मिलन हुआ। दोनों की नजरें मिलीं। इससे सामयिक मुनि को अति भयानक मोहनीय कर्म का उदय हुआ। अपनी संसारी पत्नी-साध्वी के प्रति कामविकार जागृत हुआ। साध्वी को इस बात की भनक लग गई। उसने अपने गुरू को बताया। शीलरक्षा के लिये तुरंत विहार करने की गुरू ने तैयारी की। बंधुमती साध्वी ने सम्भवित संकट से बच जाने के लिये अनशन कर लिया।

सामयिक मुनि को अनशन की खबर होते ही उसने भी अनशन किया। बहुत गहरी ठेस लगी। लेकिन स्वकृत भूल का गुरू के समक्ष प्रायश्चित तो नही किया और अनशन में ही मृत्यु (कालधर्म की प्राप्ति) हुई। उसी सामयिक मुनि की आत्मा यह आर्द्रकुमार के रूप में जन्मी। बंधुमती साध्वी ने किसी नगर के सेठ के घर श्रीमती नामक से कन्या के रूप में जन्म लिया।

जातिस्मरण से अपनी भूल और उसका अ-शोधन (अशुद्धि) समझ में आने पर आर्द्रकुमार को बहुत दुःख हुआ। अनार्य देश में जन्म होने का कारण अब उसकी समझ में आ गया।

अब उसकी इच्छा कल्याणमित्र अभयकुमार से मिलने की हुई। आर्यदेश पहुँचकर उसने आत्मकल्याण का मार्ग अपनाने का संकल्प किया।

सारी बातें पिताजी को बतायी जाने पर वे चौंक गये। बेटा हाथ से न निकल जाये इसलिये ५०० सामंत राजाओं को सुभट के रूप में तैनात किया। उस पर सुभटों का सख्त चौकी पहरा बिठा दिया गया।

सुभटों के पहरे से पलायन हो जाने के लिये आर्द्रकुमार रोज थोडी दूर,दूर,कुछ और दूर सैर के लिये जाने लगा। एक दिन जहाज तैयार रखवाकर सुभटों की नजर से बच निकला और आर्यदेश में पहुँच गया। किनारे पर पाँव रखते ही उसने अतिशय आनंद अनुभव किया।

अभयकुमार को प्रतिमाजी देकर संयम का मार्ग पकड लिया।

अब वे आर्द्रमुनि हुए। उसी वक्त देवों की आकाशवाणी हुई कि -"यह साहस मत करो। भोग भोगने का तीव्र कर्म उदय में आकर आपको पटक देगा। आर्द्र का विराग तीव्र था। वे मुनि होकर ही रहे। उन ५०० सुभटों ने अपना कर्तव्य पालन नही किया। अतः राजा ने उनको देशनिकाला दिया। वे भी समुद्रयात्रा करके आर्य देश पहुँचे। आर्द्र मुनि के मिलने पर उन्होंने सारी बातें बता दी। उन्हें प्रतिबोधित करने पर सब ने दीक्षा ग्रहण की।

और...कुछ समय बाद यकायक उस भोगावलि कर्म का उदय हुआ। एक निमित्त उत्पन्न हुआ .आर्द्रमुनि का मुनिजीवन से पतन हुआ।

हुआ यूँ कि वसंतपुर नगर के उद्यान में एक वृक्ष के नीचे मुनिवर ध्यानस्थ खडे थे। संध्यावेला में कुछ लडकियाँ उसी उद्यान में पेड से लिपटकर "यह मेरा दुल्हा !"का खेल खेलने लगी। साध्वी बंधुमती की आत्मा –श्रीमती भी उसी में थी। वह श्रीमती वृक्ष से सटकर खडे आर्द्रमुनि को अंधेरा होने की वजह से स्पष्ट नजर नही आने पर "यह मेरा दुल्हा "कहकर लिपट गई और पैरों के पास जा गिरी। मुनि चौंक गये। उन्होंने तुरंत उस स्थान पर से अपना पैर उठा लिया।

श्रीमती की दृष्टि उनके पैर में रहे कमल के चिह्न की ओर गई। मुनि तो दूसरे ही क्षण वहाँ से चल दिये। श्रीमती के यह हाल देखकर सहेलियाँ ने हँसते हुए कहा ,"वाह रे श्रीमती ! तुमने तो अच्छा वर चुन लिया।"

समय बीतने लगा। जब श्रीमती के विवाह का समय नजदीक आ गया तब उसने अपने माता पिता से कहा :"जिसे मैं भूल से लिपट गई थी वही मेरा इस भव में पति हो सकेगा अन्यथा मैं किसी अन्य का तो मैं पति के रूप में स्वीकार करूँगी नही। मैं आजीवन कुमारिका रहूँगी। उस साधु के पैर में मैंने कमल का चिह्न देखा है। यदि सदाव्रत खोला जाये और वह साधु भिक्षार्थ वहाँ आ जाये तो मैं उसे कमल के चिह्न से पहचान जाऊँगी।"

बेटी के कहे अनुसार माता-पिता ने साधु,संतों और भिक्षुओं को दान देना प्रारम्भ किया। योगानुयोग आर्द्र मुनि एकबार वहाँ पहुँच गये। हाँ...भोगावलि कर्म ही उन्हें वहाँ खींच लाया था। श्रीमती ने उनको पहचान लिया। माता पिता ने प्रस्ताव रखा। मुनि का मन विचलित हो गया। तुरंत मुनिवेश उतर गया।

आर्द्र मुनिवर अब श्रीमती के पति हो गये। पूर्वभव के पाप का प्रायश्चित नही करने पर यह अंजाम आया।

संसार चलने लगा। बरस पर बरस बीतते चले। एक बेटा भी हुआ। कुछ बोलना शुरू किया ही था कि आर्द्र को संयम जीवन की यादें सताने लगी। संसारजीवन के बारह वर्ष व्यतीत हो गये तब उसने श्रीमती के समक्ष पुनः वर से मुनिवर बन जाने का प्रस्ताव रखा।

श्रीमती ने उसी दिन से अपनी तथा बेटे की जीविका के लिये चरखा कातना शुरू कर दिया था। बेटे ने माँ से ऐसा करने की वजह जानना चाहा। माता ने उसे बताया कि"अब जब तुम्हारे पिता साधु बननेवाले हैं तो हमें अपने पेट के लिये भी कुछ करना पडेगा ना ?

लडके ने कहा:" मेरे पिता दीक्षा ले ही नही सकेंगे। मैं उनके पैरों को बांध देता हूँ। बाद में देखता हूँ कि वे साधु होने के लिये घर से बाहर कैसे निकलते हैं ?"

बेटे की बालक सहज मधुर वाणी का माधुर्य आर्द्र के हृदय को झिंझोड गया। पुत्र मोह तीव्रता से जग

गया।

बेटे ने चारपाई पर बैठे पिता के दोनों पैर सुत की लडी से बांध दिया। मन से विचलित आर्द्रमुनि ने उन ऐंठनों को गिना तो वे बारह निकली। मन से मान लिया कि अभी बारह वर्ष का सांसारिक जीवन बीताना शेष है। पुनः बारह वर्ष का संसार चला। बाद में दीक्षा लेकर आत्मकल्याण की राह पकडी। पाप तो छोटा ही था पर उसका उद्धार किया तो अंजाम बहुत करुण आया।

निकाली गई कैंसर की गाँठ जिला देती है लेकिन नही निकाला कांटा शायद जान भी ले ले।

## 11. ''साधुजीवन दुरूह है''

भगवान महावीर देव के प्रथम पट्टधर सुधर्मास्वामीजी का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हुए एक लकडहारे को दीक्षा प्रदान की।

वह गरीब आदमी था और जाति -कर्म से लकडहारा था। इतने मात्र से उसे दीक्षा दान करने से लोगों में सुधर्मास्वामी जी की बहुत निंदा होने लगी।

हवा के साथ बात भी फैलती चली। सुधर्मास्वामीजी लोगों की अविचारी बेफहम निंदा का शिकार होने लगे। हम इतना धर्म करनेवाले दीक्षा नही ले पा रहे हैं और कल तक रात्रिभोजन करनेवाला,हिंसादि पापों का सेवन करनेवाला लकडहारा आज दीक्षा ग्रहण कर ले ! यह कैसे हो सकता है ?महाराज ही चेले बढाने की लालसा के चक्कर में फँसे हों ,ऐसा लगता है। अन्यथा स्पष्ट इनकार न कर दे !"यह था लोकापवाद का बेसूरा निहितार्थ।

"जहाँ अप्रीति हो वहाँ रहना नही।"प्रभुवीर के इस वचन को लक्ष्य में करके सुधर्मास्वामी ने दूसरे ही दिन नूतन शिष्य सहित समस्त मुनिगण के साथ उस नगर से विहार कर लिया।

अभी कुछ आगे बढे ही थे कि सामने से मंत्रीश्वर अभय का आगमन हुआ। वंदनादि विधि करके आश्चर्य के भाव के साथ अभय ने गणधर भगवंत से सवाल पूछा। भगवंत ने सारी हकीकत बयाँ कर

दी। लोकापवाद में रही नितांत मूर्खता को लेकर अभय का अंतर रो ऊठा।

उसने स्वस्थता धारणकर गणधर से करबद्ध भाव के साथ निवेदित किया कि "भगवंत ! आप एकबार उपाश्रय वापस लौट आइए। मेरा यह नम्र निवेदन है। मैं सारी बाजी ठीक कर देने का आपको विश्वास दिलाता हूँ। आप तनिक भी चिंता न करें। मुझे एक ही बात का दु:ख है कि धर्मिष्ठ कहे जानेवाले तथाकथित कुछ लोगों की हलकी मानसिकता का आपको शिकार होना पडा ! सचमुच भगवन् ! इसे मैं हमारा तीव्र पापोदय ही समझता हूँ।"

अभय की दर्दपूर्ण बिनति से गणधर भगवंत मुनिगण के साथ उपाश्रय वापस लौटे।

दूसरे दिन सुबह चौराहे पर अभयकुमार ने मूल्यवान रत्नों के तीन पूँज रखवाये। सैनिकों को तैनात किया गया और बारबार घोषणा होती रही कि "जो व्यक्ति अग्नि,पानी और स्त्री का (विजातीय का )स्पर्श भी जीवनपर्यंत नही करने की प्रतिज्ञा करेगा,उसे ये तीनों रत्नराशियाँ भेंट की जायेंगी।"

हजारों लोग चौराहे पर इकट्ठा तो हुए पर उपर्युक्त शर्तें मानने के लिये कोई तैयार नही था क्योंकि इन तीन के स्पर्श रहित जिंदगी का होना तो कल्पनातीत ही है। ऐसा सबका कहना था।

शाम ढल गई। अभय मंत्रीश्वर चौराहे पर आये।

हजारों लोगों के समक्ष उपस्थित हुए। उनका मुख गंभीर हुआ। उन्होंने उपस्थित लोगों से पूछा कि " अब आप समझ गये होंगे कि मूल्यवान रत्नों की तीन राशियाँ भेंट मिल सकती हों तब भी अग्नि,पानी और स्त्री के स्पर्श का त्याग कर पाना असम्भव है। यदि आपकी यह दशा हो तो जिस लकडहारे ने ऐसे किसी प्रलोभन के बिना अग्नि आदि तीनों चीजों के आजीवन त्याग रूप जैन-दीक्षा कल अंगीकार की है ,उसका कद्र करने जितनी सज्जनता क्या आप लोगों में शेष नही रही है ?उसने कैसे कठोर व्रत का आजीवन स्वीकार किया है ? यह बात अब तो आपके पल्ले पडी या नही ?यदि हाँ...तो आपने उसकी तथा दीक्षादाता गुरुदेवश्री सुधर्मास्वामी जी की भरपेट निंदा करने का जो अपकार्य किया है,उसकी हार्दिक क्षमा उनके पास जाकर मांग लो। आप सब की ऐसी अधमाई को देखकर मुझे बहुत दु:ख हो रहा है।" मंत्रीश्वर के शब्द सबके दिलों को छू गये। सब ने उनकी भावना का अतिशीघ्र हार्दिक अमल किया।

# 12. कैसी भीषण गरीबी!

किरण ; दसहजार की आबादी वाले गाँव का अत्यंत दु:खी आदमी था। रोज क्या पकाकर खिलाया जाये –यही बहुत बडी समस्या ! वह स्वयं,पत्नी और आठवर्षीय किशोर नामक एक बेटा –इस प्रकार इस परिवर में कुलमिलाकर तीन लोग थे।

पत्नी गर्भवती हुई। येन केन प्रकारेण सात-आठ महिने तो बीते पर आखिरी महिना भारी मुश्किल समय आ गया। स्त्री को पौष्टिक आहार देना तो दूर,चाय का पानी पिलाने का सामर्थ्य भी किरण के पास नही था।

अति चिन्तितावस्था में वह एक दिन गाँव में भटक रहा था कि उसने एक जगह पर लोगों का समूह देखा। पूछने पर उसे पता चला कि शकराभाई के लडके को पागल कुत्ते ने काट लिया था। वह काले रंग का था। वह लंगडारहा था। उसकी पीठ पर जख्म था। वहाँ से खून रिस रहा था। उसके दांत बाहर निकले हुए थे।

जिस किसी को पागल कुत्ता काटता है ,उसे सरपंच से कुछ सहाय मिलती थी। दवाखाने से चौदह इन्जेक्शन नि:शुल्क लेने होते थे। इन्जेक्शन पूरे हो जाये तब तक प्रतिदिन दस आने (आज के बासठ पैसे ) नकद और एक रुपये का फल मिलता था। इसके लिये कागज बनते थे। उसमें कुत्ते के काटे जाने की साक्षी के रूप में दो लोगों को हस्ताक्षर करने होते थे।

शकराभाई की ओर से यह सारी औपचारिकताएँ संपन्न हो जाने के बाद वे उपरोक्त कथित सहाय के लायक हुए थे।

कुछ समय तक किरण यह सब सोचता रहा। जाते जाते एकाएक उसके मन में कोई विचार आया और उसका मन राजी हो गया। वह गुनगुना रहा था,रोज दस आने नकद और दो रूपयों का फल ! बेडा पार हो जायेगा !

रात हुई। किरण अपने घर जाकर सो गया। किशोर उसकी बगल में सोया हुआ था। सुबह चार

बजे किशोर जोर से चिल्लाया। उसकी माँ उसकी बगल में ही सोयी हुई थी। वह जग गई।"क्या हुआ?"

पूछने पर उसने कहा कि किसी ने काट लिया है उजाला करके मुँह पर लगे हुए दांत दिखाई दिये। उसी वक्त किरण को होठों पर खून के दाग देखकर किशोर की माँ ने पूछा,"क्या आप ही ने ?"

"चूप कर।"बीच में ही बात काटते हुए उसने कहा :"किशोर को पागल कुत्ते ने काट लिया है।" पास पडोस के लोग भी किशोर की चीख सुनकर दौडे चले आये।

बातचीत के दौरान किरण ने पागल कुत्ते का हूबहू वर्णन किया। सब ने खूब सहानुभूति दिखाई। कागज-पत्र तैयार किये गये और दूसरे ही दिन से पूर्वोक्त सरकारी सहाय मिलना शुरू हो गया।

प्रति दूसरे दिन किशोर को इन्जेक्शन दिया जाना शुरू हुआ। किरण उसे रोज दवाखाने ले जाने लगा।

चार इन्जेक्शन लेते लेते तो किशोर को उसका विष चडा। तेज बुखार आने लगा। मुँह इत्यादि पर शोथ आ गया।

"बापा ! अब मुझे इन्जेक्शन नही लेना है। मुझे जरा भी अच्छा नही लग रहा।"-किशोर ने कहा।

"नालायक ...चूप रह...पूरे चौदह इन्जेक्शन तो लेने ही होंगे। वह जब तक लिये जायेंगे तब तक रोज दो रूपये और दस आने पूरे मिलते रहेंगे। कितना मजा आयेगा !"

और डॉक्टर के इनकार पर भी चार दिन में दो और इन्जेक्शन दिये गये।

किशोर के जीवन की वह आखिरी रात थी। रात्रि के चार बजे उसकी मौत हो गई।

और ...ठीक उसी समय किसी बच्चे के रुदन की आवाज सुनाई पडी।

किशोर के छोटे भाई के जन्म की वह बधाई थी।

# 13. आज्ञापालन में ही धर्म

जो सही मायने में धर्मशास्त्री है,उसकी प्रत्येक आज्ञा का यथाशक्ति पालन करना चाहिये ;जिसकी पालना न की जा सके उसके कट्टर समर्थक होना ही धर्म है ।

ऐसे सत् धर्मशास्त्रों की आज्ञा में जो रहता है वही साधु कहलाता है । ऐसे साधु की आज्ञा में जो पति इत्यादि संसारी जीव रहे ,उसे सद्गृहस्थ कहते हैं । ऐसे सद्गृहस्थ की आज्ञा में जो पत्नी आदि रहे उसे सन्नारी कहा जाता है ।

धर्म और संस्कृति ने मानव संसार के प्रत्येक विभाग को उसकी कक्षा के अनुसार –यथायोग्य आज्ञाएँ फरमायी हैं ; उनका पालन उन विभागों के जीवों को अवश्य करना चाहिये ।

बादशाह अकबर के नौ रत्नों में तानसेन संगीत रत्न था ।

तानसेन के प्रति बादशाह की बहुत मीठी नजर के कारण कई लोग उसकी ईर्ष्या करने लगे थे ।

आगे चलकर तो ऐसी स्थिति का निर्माण हुआ कि तानसेन का काँटा निकालने का षड्यंत्र इर्ष्यालुओं ने किया ।

एक दिन उन्होंने बादशाह से कहा कि "तानसेन ने दीपकराग सिद्ध किया है । उस राग के गायन से बुझे हुए सारे दिये प्रज्वलित हो जाते हैं ।"

बादशाह को यह बात जानकर कुतूहल अनुभव किया । उसने तानसेन को दीपकराग गाकर दिये प्रज्वलित कर दिखाने का आदेश दिया ।

दीपकराग गाने से जैसे जैसे दिया प्रज्वलित होता जाता है वैसे वैसे गायक के शरीर में असह्य जलन जनित व्यथा उत्पन्न होती है । इस दाह के शमन के लिये यदि कोई अन्य गवैया मेघमल्हार गाकर बारिश लाये तो उसके स्नान से ही पीडा शांत हो सकती है । अन्यथा मौत अनिवार्य -ऐसा नियम है ।

बादशाह के आग्रह की भूमिका में छद्म रूप में रहा विरोधियों का षड्यंत्र तानसेन की समझ में आ

गया।

बादशाह की भारी जिद के रहते तानसेन को विवश होकर दीपकराग सुनाना स्वीकार करना पडा। और...उस दिन सैंकडो दिअलियाँ रखी गईं।

बादशाह के समक्ष तानसेन ने दीपकराग गाया। जैसे जैसे वह गाता गया वैसे वैसे दिअलियाँ प्रज्वलित होती चलीं। आखिरकार एक एक करके सारी दिअलियाँ प्रज्वलित हो गईं।तानसेन का शरीर भी लाय की पीडा के कारण जलने लगा।

उसकी पीडा असह्य हो जाने के कारण वह राजमहल से भागा,नगर छोडा,जंगल में अकेले ही "बचाओ...बचाओ "पुकारता हुआ दौडने लगा।

ऐसे में वह किसी गाँव की सीमा में पहुँच गया। वहाँ कुएँ पर पानी भरने के लिये दो बहनें –किसी मुसलमान की पत्नियाँ पानी भरने के लिये आयी थीं। उन्होंने तानसेन को देखा। उसके हाव-भाव और मुद्रा पर से जान लिया कि दीपकराग जनित लाय से यह आदमी भीतर से जल रहा है।

दोनों बहनें महान स्वरसाम्राज्ञी थीं। वे मल्हारराग की पूर्ण ज्ञाता थीं। वे मल्हारराग गा सकती थीं।

तानसेन की बीमारी का इलाज उनके पास था। जैसे ही तानसेन नजदीक पहुँचा कि उन्होंने पूछा कि "भाई ! आपने दीपकराग गाया है !"

बस इसी सवाल से तानसेन की समझ में आ गया और उसने कहा ;"बहनो ! आपने मल्हारराग में सिद्धि हासिल की है। जल्दी कीजिए,गाओ और मुझे बचा लो। मेरे लिये यह लाय असह्य है।"

बहनों ने सवाल किया,"भाई ! हमारे पति बाहर गाँव गये हुए हैं। उनकी आज्ञा के बिना हम कुछ नही कर सकतीं।"

तानसेन ने आक्रोशपूर्वक कहा :"ओ मेरी बहनो ! क्या खुदा की आज्ञा पति की आज्ञा से बढकर नही है ! खुदा की आज्ञा है कि "दु:खी को दु:खमुक्त किया जाये।"

तानसेन की यह बात इन बहनों के मन में बैठ गई। तानसेन को अपने घर ले जाकर सारी तैयारियाँ करके मल्हारराग सुनाया। कुछ ही समय में आकाश में काले कजरारे बादल उमड आये। टकराये

...और मूसलाधार बारिश होने लगी।

तानसेन बच गया। पुनः अपने घर लौटा।

बादशाह अकबर को जब इस बात की खबर हुई तो उसने उन बहनों से मल्हारराग सुनने तथा हो रही मूशलाधार बारिश को देखने की जिद की। यह बात किसी को नही बताने बहनों की शर्त का तानसेन ने स्वीकार किया था पर बादशाह के आगे लाचार होकर सारी बात खूल जाने का अब उसे बहुत दुःख हुआ।

उसने बहनों से मिलकर बादशाह की जिद के बारे में बताया।

लाचार होकर गाना कबूल करना पडा।

बादशाह ने गाँव के सिवान में पडाव डाला। उस छावनी में उन बहनों ने आकर पति की अनुपस्थिति में मल्हारराग गाया। मूशलाधार बारिश हुई। बादशाह तो प्रसन्नतावश आफरीन पुकारने लगा।

बैलगाडी में सवार होकर अपने घर जा रही बहनों ने तानसेन के नाम पर निम्न लिखित चिट्ठी लिखकर गाडी पर रख दी और अपने पेट में कटारी उतारकर मौत को गले से लगा लिया।

"प्रिय भाई तानसेन ! खुदा की आज्ञा को लक्षित कर पहलीबार तुम्हें बचा लेने के लिये हमने मेघमल्हार गाया। उसका आज भी कोई अफसोस नही है परंतु नाचीज बादशाह को राजी करने के लिये जहाँ खुदा या खाविंद की भी कोई आज्ञा न होने पर भी पुनः इस राग को गाना पडा है-इस बात का हमें भारी दुःख है।

आज हमारा पतिव्रत खत्म हो गया है। अतः हम अपने जीवन को भी समाप्त कर रही हैं। भाई ! इसमें आपको कोई दोष नही है।"

# 14. अपात्र को पद नहीं दिया जा सकता।

भारी बहुमत के साथ अब्राहम लिंकन अमरिका के पद पर चुनाव जीत गये। उन्होंने जिस प्रधान मण्डल की रचना की,उसमें विरोधी दल के जो पुराने प्रधान थे,उनको उस पद पर कायम रखा। इससे लिंकन के मित्रों और सहायकों को दु:ख हुआ। उन्हें प्रधान होने की बडी आशा थी।

एक दिन वे सब इकट्ठा होकर अपने मन की बात कहने के लिये लिंकन के पास गये। उन्होंने कहा कि उनको दिये गये सहयोग का बदला प्रधान पद की भेंट के साथ मिलना चाहिये। उपरांत विरोधी दल के लोगों को प्रधानपद पर चालू रखना –यह तो राजनीति के खेल के विरुद्ध है।

उनकी बातों को शान्ति से सुन लेने के बाद लिंकन ने कहा कि "मैं आपको एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ। आप सुनिए।" एक राजा था। उसका एक प्रधान था। राज्य का अधिकांश कारोबार वह प्रधान ही सम्हालता था।

एक दिन शाम चार बजे राजा को घुडसवारी करने की ईच्छा हुई। वह वर्षाकाल था ;अतः राजा ने प्रधान से पूछा कि "हम घोडे पर सवार होकर घूमने जायेंगे तो बारिश तो नही होगी ?"

प्रधान ने आकाश की ओर देखा सूर्यदेव पूरबहार में खिले हुए थे। यह देखकर उसने कहा कि,"राजन्! नि:शंक रहिये। तीन चार घंटे तक वर्षा होने की कोई सम्भावना नही है।"

प्रधान के वचन पर भरोसा करके राजा उस प्रधान के साथ सैर पर निकला।

सैर करते करते वे किसी बडे तालाब के पास आये। उस वक्त वहाँ एक गडरिया मेढें चरा रहा था। उसके पास मेढों के उपरांत दो-चार गायें थी और दो-चार गधे भी थे।

तालाब के सौंदर्य का आनंद ऊठाने के लिये राजा और प्रधान घोडे पर से उतर गये थे और उस प्रदेश में टहल रहे थे। एकाएक उस गडरिये ने अपने बेटे से कहा ,"बेटा! जल्दी कर। जोरदार बरसात होनेवाली है। तुम सारे पशुओं को दौडाकर ले जाओ और उन्हें अपनी जगह पर पहुँचा दो।"

ये शब्द सुनकर प्रधान हँस दिया। उसने राजा से कहा ,"कितना मूर्ख है,यह गडरिया! आकाश में एक भी बादल नजर नही आ रहा फिरभी यह मूर्ख कुछ ही देर में बरसात होने का पूर्वानुमान कर रहा

है !" पर यह क्या ? कैसा कमाल हो गया । अभी तो पूरे पंद्रह मिनट भी नही बीते थे कि धारासार बारिश होने लगी । एकाएक एक काला बादल उमड आया और मूशलाधार वर्षा होने लगी ।

पशुओं को भगाकर गडरिये का बेटा तो घर पहुँच गया पर उसके बूढे बाप ने अभी आधा रास्ता ही काटा था ।बारिश के टूट पडने से राजा प्रधान के साथ बहुत गुस्साया क्यों कि वह पूरा भीग गया था और दूसरे प्रधान झूठा प्रमाणित हुआ था ।

राजा ने प्रधान से कडे शब्दों में कहा कि-"बरसात का पूर्वानुमान करने जितनी भी तुम्हारे अंदर अक्ल न हो तो मैं क्यों प्रधानपद पर रखूँ ?तुम प्रजा का कल्याण कैसे कर सकोगे ?अब तुम्हारे स्थान पर मुझे सूक्ष्म बुद्धि रखनेवाले गडरिये को ही प्रधान पद पर नियुक्त करना होगा ।"

भारी बरसात से बचने के लिये राजा और प्रधान दोनों एक्र बरगद के पेड के नीचे खडे रहे । तत्पश्चात राजा प्रधान को लेकर उस गडरिये के पास गया । राजा ने उस गडरिये से कहा ;"गडरिये भाई ! बरसात का पूर्वानुमान करने जितनी आपकी सूक्ष्म बुद्धि पर मैं फिदा हो गया हूँ । मेरे इस प्रधान में इतनी बी समझ नही है । अतः मैं उसे प्रधान पद पर से बरखास्त करके उस स्थान पर आपको नियुक्त करना चाहता हूँ । आप मुझे इस बात के लिये सम्मति दीजिए ।"

गडरिये ने कहा:" महाराज ! यह पूर्वानुमान जिसने किया हो,उसे यश प्रदान कीजिए । ऐसा पूर्वानुमान करना मुझे नही आता पर मुझे इतना पता अवश्य है कि गधा जब अपने दोनों कान ऊपर ऊठाकर जोर जोर से रेंकने लगता है तब कुछ ही समय बाद बारिश हो जाती है ।

मैंने इस जानकारी के आधार पर यह पूर्वानुमान किया था । अन्यथा उसका सही पूर्वानुमान तो गधे ने कान ऊपर ऊठाकर रेंकने द्वारा कर दिया था!"

गडरिये की यह बात सुनकर राजा ने कहा,"गडरिये भाई ! ठीक है,यदि ऐसा ही है तो मैं आपको प्रधान पद पर नियुक्त न करते हुए उस गधे को नियुक्त करूँगा,जो ऐसी सूक्ष्म समझ रखता है ।"

यह कथा सुनाकर लिंकन ने अपने मित्रों से इतना ही कहा कि "इस प्रकार मैं गधों को प्रधान पद देना नही चाहता ।"

बेचारे मित्र! ऐसे सन्न रह गये और वहाँ से चल दिये !

# शील-ब्रह्मचर्य

## 15. शिवाजी का शील

एक बार शिवाजी ने नवाब के शहर पर आक्रमण किया। नवाब के राजमहल को लूट लिया गया। उस समय नवाब की पुत्रवधू शिवाजी के किसी सैनिक के हाथ में आ गई। शिवाजी के सैनिकों ने सोचा कि यदि हम ऐसी अतिसुंदर स्त्री को अपने राजा को सौंप देंगे तो हमें बड़ा उपहार मिलेगा। सिपाही शिविर में पहुँच गये और नमस्कार कर शिवाजी के समक्ष उस स्त्री को पेश किया।

शिवाजी उस औरत की तरफ बिना पलक झुकाये देखता रहा। सैनिकों ने सोचा कि अब तो इस अद्‌भुत चीज पर बहुत बड़ा उपहार मिलेगा।

परंतु शिवाजी के मुँह से निकले शब्द सिपाहियों ने सुने कि, "हे भगवान ! यदि मुझे ऐसी खूबसूरत माँ मिली होती तो मैं ऐसा साँवला नहीं होता, अति रूपवान होता।" यह शब्द सुनकर सैनिक तो चकित रह गये।

शिवाजी ने सैनिकों से कहा: "इस खूबसूरत औरत को सम्मानपूर्वक उसके घर तक पहुँचा दो और फिर कभी ऐसी भूल नहीं करना।"

## 16. संयमित जीवन से लाभ

बाल्यावस्था में नेपोलियन किसी नाई के घर रहकर अध्ययन कर रहे थे। नाई की पत्नी अति सुंदर और कामुक भी थी। अत: वह नेपोलियन के अधिक निकट जाने का प्रयत्न करती रहती थी पर नेपोलियन ने उसे कभी अपने पास फटकने नहीं दिया।

जब नेपोलियन फ्रांस का प्रमुख बना तब उसी नगर में जहाँ नाई रहता था, वहाँ गया। वहाँ उस नाई की दुकान पर जाकर उस स्त्री से पूछा कि,"क्या इस दुकान में पहले बोनापार्ट नामक कोई लड़का

रहता था ?" उस औरत ने जवाब दिया,"हाँ साहब, एक अति नीरस लड़का यहीं रहता था।"

नेपोलियन ने कहा, "वह बोनापार्ट निरा नीरस (शुष्क) था, इसलिए वह फ्रांस का प्रमुख बना। यदि वह नीरस नही होता और माशूक होकर आप में खोया रहता तो वह कब का मसला जाता और खत्म हो गया होता। बहन ! वह बोनापार्ट मैं ही हूँ -नेपोलियन बोनापार्ट...!"

## 17. शुकदेव : ''मैं जन्म धारण नहीं करूँगा''

"वत्स ! तुम अपनी माता के गर्भ से बाहर आओ। इस धरती पर जन्म लो।"

होने वाले बालक के पिता व्यास ने ये शब्द गर्भस्थ शिशु से कहे। गर्भावस्था का काल कब का खत्म हो गया था फिर भी बच्चे का जन्म नही हो रहा था।

गर्भ में रहे -रहे उस बालक ने कहा, "सारे पाप और सारे दुःखों का मूल जन्म है। मुझे जन्म नहीं लेना है तथापि यदि आप मुझे "अजन्मा" जाने की साधना करने की अभी से आज्ञा प्रदान करें तो मैं जन्म धारण करूँ।" पिता द्वारा सम्मति दिये जाने पर बालक की आत्मा ने जन्म धारण किया। उसका नाम रखा गया-शुकदेव। वह जन्म से ही संन्यासी हुआ। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का सहज तेज उसकी उम्र के साथ बढता चला। एक बार ...

अनेक घरों की स्त्रियाँ निर्वस्त्र होकर नगर के बाहर कुण्ड में स्नान कर रही थीं। उसी वक्त सोलह वर्षीय शुकदेव का वहाँ से गुजरना हुआ। स्त्रियों ने उन्हें देखा। तनिक भी चिंता किये बगैर, विचलित हुए बगैर उन्होंने उसी प्रकृत अवस्था में कुण्डस्नान जारी रखा।

कुछ देर पश्चात् पिता व्यास भी वहाँ से गुजरे। उन्हें देखते ही नारियों ने कुण्ड से बाहर निकलकर वस्त्र धारण कर लिये।किसी ने नारियों से इस फर्क के विषय में पूछा तो बताया कि "शुकदेव के रोम-रोम में सहज ब्रह्मचर्य है जबकि उनके पिताजी व्यास के मुख पर पुरुषार्थ नजर आता है। अतः हमें उनसे थोडा सा डर लगा।"

# 18. वाह, राणा रायमल्ल! वाह तुम्हारा न्याय-प्रेम

राणा रायमल्ल के पुत्र जयमल्ल को पक्का भरोसा था कि राव रतनसेन की रुपवती पुत्री ताराबाई के साथ रतनसिंह विवाह-सूत्र में पिरोयेंगे । ऐसे भरोसे के अतिरेकी आवेश वश एक दिन वह राजकुमारी ताराबाई के पास मध्यरात्रि वेला में लुकाते छिपाते पहुँच गया।

ताराबाई गहरी नींद में थीं। जयमल्ल ने उसका हाथ खींचा। घबराकर ताराबाई चीख ऊठी। उस चीख को सुनकर उसके पिता राव रतनसिंहनंगी तलवार लिये दौड़े चले आये और तत्क्षण "जयमल्ल" को परपुरुष समझकर उसकी गरदन को धड़ से कलम कर दिया।

पर जब राव को पता चला कि "परपुरुष" तो राजकुमार जयमल्ल था-जिसके साथ अपनी बेटी ताराबाई का विवाह होना सम्भवित था। तब राव को गहरा सदमा पहुँचा। उससे भी ज्यादा तो उसे उस बात का डर बैठ गया कि राणा रायमल्ल भारी हमला कर देंगे।

पर वह खौफ गलत सिद्ध हुआ। जब राणा रायमल्ल को सारी घटना का पता चला तो उन्होंने अपने किसी खास दूत को रतनसिंह के पास भेजा।

उन्होंने बताया कि, "मेरे बेटे की हत्या आपके हाथों से हुई है, उस बात की आप तनिक भी फिक्र न करें। जो युवा, जवानी के आवेश से भरकर जिसके साथ अभी विधिवत् विवाह सम्पन्न हुआ ही नही है, ऐसी किसी कन्या के पास अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए जाये, उसे ऐसा दण्ड मिलना ही चाहिए।

आप अपनी बिटिया के शील के लिए इतने सजग हैं, एतदर्थ मैं आप को बहुत बहुत हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और ऐसे महान राणा के रूप में आपके सम्मान स्वरूप मैं अपना भेदनोर नामक परगना (तहसील) आपके भेंट कर रहा हूँ।

# 19. अष्टावक्र ऋषि की अग्निपरीक्षा

कहा जाता है कि अष्टावक्र ऋषि को विवाह रचाने का मन हुआ। उन्होंने वदान्य ऋषि से उनकी कन्या सुप्रभा का हाथ मांगा। वदान्य ऋषि मौन रहे। दूसरी ओर वदान्य ऋषि ने अष्टावक्र के शील की परीक्षा करने का निर्णय किया।

कोई बहाना बनाकर वदान्य ऋषि ने अष्टावक्र को कुबेर के राज्य में जाने के लिए कहा। वहाँ पहुँचने पर कुबेर ने अष्टावक्र की सेवा में अप्सराओं को रख दिया पर उनके हावभाव और अदाओं से अष्टावक्र तनिक भी चलित नहीं हुए।

रात हुई। अष्टावक्र ऋषि को एक शयनकक्ष दे दिया गया। मध्यरात्रि होने पर वहाँ एक बुढिया आयी। वह बुढिया दूसरे पलंग पर सो गई, पर एकाध घण्टा बीतने पर वह बुढिया अष्टावक्र के पास गई। उसने अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिये अष्टावक्र से विनति की।

अष्टावक्र ने कहा, "यह मेरे लिये सम्भव नहीं है क्योंकि मैं परदारा सेवन नहीं करता।"

वृद्धा ने कहा, "मैं किसी पर की स्त्री –पर स्त्री नही हूँ। मैं तो आजन्म कुमारिका हूँ।"

ऋषि ने कहा ,"फिर भी मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हो सकता, क्योंकि मैंने अभी-अभी एक कन्या को पसंद कर लिया है।"

बुढिया को लगा कि अष्टावक्र का चित्त चलित नहीं हो रहा, इसलिए फौरन उसने अत्यंत रूपसि कुमारिका का स्वरूप धारण कर लिया और कामुकतापूर्ण कटाक्ष करने लगी।

पर उसका भी अष्टावक्र पर कोई असर दिखाई नही दिया। तब वह कुमारिका विदा हो ली।

बाद में जब अष्टावक्र के वदान्य ऋषि के पास पहुँचने पर वदान्य ऋषि ने कहा कि,"आपको मैं धन्यवाद दे रहा हूँ, मैंने ही आपकी परीक्षा की थी। आप उसमें से सर्वांग पार उतर गये हैं। मैं अपनी सुप्रभा आपको सौंप रहा हूँ।"

# 20. महासती पद्मिनी

(वीर विनोद के आधार पर)

रामचंद्रजी ने सीता के लिए रावण से युद्ध किया।

श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर की धरती के लिए कौरवों से युद्ध किया।

सबूर ! मेवाड़ के महाराणा समग्र देश के लिए और नारी के स्वमानपूर्ण शील के लिए सैकडों वर्ष लड़ते रहे।

मेवाड़ के महाराणा सांगा की पीढी में हुए महाराजा रावल रत्नसिंह (राजधानी चित्तौड़) ने अपनी पटरानी पद्मिनी के खातिर दिल्ली के तत्कालीन बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी (राज्याभिषेक समय ईस्वी. १२९६) के साथ युद्ध किया था।

महाराणा रत्नसिंह के पास रघुनाथ नामक एक जादूगर था। वह अनेक प्रकार से महाराणा रत्नसिंह को बहुत खुश रखता था पर दुर्भाग्यवश महाराजा एकदा रघुनाथ से नाराज हुए। व्यथित रघुनाथ तीव्र प्रतिशोध की भावना के साथ अल्लाउद्दीन खिलजी के पास दिल्ली पहुँचा। मैत्री कर लेने के बाद उसने महारानी पद्मिनी की रूप राशि का जबरदस्त वर्णन किया।

वैसे भी बहुत पहले से अल्लाउद्दीन की चाहत चित्तौड़ जीत लेने की थी। उसमें उसे युद्ध करने का निमित्त मिल गया। उसने रत्नसिंह से पद्मिनी की मांग की। रत्नसिंह के इन्कार के साथ ही युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। दोनों ही पक्षों ने जबरदस्त तैयारी कर ली। अल्लाउद्दीन ने हजारों मुसलमानों के साथ भारी आक्रमण कर दिया। महाराणा रत्नसिंह के साथ सैकड़ों राजपूत राजा भी अपनी सेना के साथ युद्ध में जुड़ गये। अतिभयानक युद्ध हुआ। दोनों पक्षों को भारी नुकसान हुआ। अल्लाउद्दीन हताश हो गया। उसे अपनी पराजय नजर आने लगी थी।

इसलिए उसने चालाकी की। उसने रत्नसिंह को बताया कि "मुझे अपने डेढ सौ-दोसौ लोगों के साथ चित्तौड़ के किले में प्रवेश करने दीजिए। बाद में पांच-सात दिन बाद हम विदा हो जायेंगे। लोगों को ऐसा लगेगा कि हमने चित्तौड़ जीत लिया है। इस प्रकार हमारी प्रतिष्ठा भी बनी रहेगी।"

हिन्दुस्तान को विदेशियों द्वारा बरबाद करने में जिस भोलेपन का बहुत बडा हिस्सा रहा है, वही भोलापन रत्नसिंह के दिमाग पर सवार हो गया। उसने सम्मति प्रदान की। अल्लाउद्दीन ने चित्तौड़ के किले में कुछ लोगों के साथ प्रवेश किया। तत्पश्चात् उसने मानो रत्नसिंह के साथ गहरी मित्रता का नाता जोड़ दिया हो।

रत्नसिंह इस कपट में भी फँस गये। दोस्त की विदाई के लिए रत्नसिंह अल्लाउद्दीन के साथ किले के प्रवेशद्वार तक आये, पर उस समय प्यार जताकर अल्लाउद्दीन रत्नसिंह को आगे ही आगे जहाँ उसकी सेना छिपी हुई थी वहाँ तक लेता चला गया। एकाएक सेना ने धावा बोल दिया। देखते ही देखते रत्नसिंह कैद हो गये !

राजपूतों में हाहाकार मच गया। अब कौन सा दाँव खेला जाये ? महाराणा को कैसे मुक्त कराया जाये ? इस विषय पर चिंतन करने के लिए सब एकत्र हुए और व्यूहरचना के सामने महाराणी पद्मिनी के दो भाई-गोरा और बादल ने स्पष्ट रूप से समझाया कि धोखे का जवाब धोखे से ही दिया जायेगा। यही सामरिक नीति है।

उन्होंने महाराजा को मुक्त कराने के लिए एक योजना बनायी। अल्लाउद्दीन को कहला दिया गया कि "महाराणी पद्मिनी आपकी बेगम होना चाहती है। आप एक बार उन्हें महाराणा से मिल लेने दीजिए।"

अति आनंदित अल्लाउद्दीन ने सम्मति प्रदान की। अतः पद्मिनी का भाई पद्मिनी बना। वह पालकी में पर्दानशीन हुआ। उस पालकी को सोलह युवा राजपूतों ने उठाया। ये सारे स्त्री वेषभूषा में थे। ऐसी अन्य अनेक रानियों के रूप में पद्मिनी को विदा करने की योजना के अंतर्गत युवा राजपूत पालकी पर सवार हुए। प्रत्येक पालकी को नारी वेष में सोलह-सोलह राजपूत उठा रहे थे।

इस प्रकार सैंकड़ो राजपूत जवान महाराणा रत्नसिंह के पास पहुँच गये। व्यक्तिगत रूप से मिले। वापसी में कुछ राजपूत युवकों के साथ रत्नसिंह शामिल हो गये और इस प्रकार वहाँ से निकल भागे। चित्तौड़ के किले में उनके आ जाने की खबर मिलते ही ,"जय भगवान एकलिंगजी की" "का सिंह गर्जन करते हुए बादल आदि सभी राजपूतों ने स्त्रीवेष का त्याग कर तलवारें खींच ली। अति भयानक

युद्ध हुआ। पद्मिनी के दोनों छोटे भाई -गोरा और बादल वीरतापूर्ण युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। अल्लाउद्दीन हार कर भाग खड़ा हुआ।

परंतु उसने जबर्दस्त सामरिक तैयारी करके पद्मिनी को पुनः प्राप्त करने के लिए पुनः यत्न किया। पुनः अतिभयानक युद्ध हुआ। उसमें महाराणा रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हुए।

यह खबर पाते ही जौहर करने के लिए अग्निकुण्डों के समक्ष सज्ज होकर खड़ी पद्मिनी आदि पंद्रह हजार राजपूतानियाँ "जय एकलिंगजी भगवान की" के नारे के साथ अग्निकुण्डों में कूद गईं। युद्धभूमि में अभी जीवित रहे उनके पतियों ने केसरिया किया।

बादशाह पद्मिनी को जीवित रूप में पाने के लिए अति अधीर हो उठा था परंतु एक एक इंच जमीन आगे बढने में राजपूत उसका जोरदार मुकाबला कर रहे थे।

बड़ी मुश्किल से जब बादशाह ने चित्तौड़ के किले में प्रवेश किया तब पद्मिनी को जौहर किये चार घण्टे बीत चुके थे ! पंद्रह हजार राजपूतानियों की गर्म गर्म राख और हड्डियाँ अग्निकुण्ड में पड़ी थी। आग शांत पड़ गई थी।

"या खुदा ! या खुदा !"करता हुआ अल्लाउद्दीन हताशावश टूट गया !

उत्तेजित होकर उसने चित्तौड़ की प्रजा पर कत्ल-ए-आम चलाया और दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

चित्तौड़ वापस पाने के लिए महाराणा रत्नसिंह ने अपने भाइयों और पुत्रों को पहले से ही किले के बाहर भगा दिया था। जिनमें से महाराणा भवानीसिंह ने चित्तौड़ पुनः प्राप्त किया था।

हिन्दुस्तान की राजाशाही तो मेवाड की ही थी। यदि आज भी उसका शुद्ध राजबीज दिल्ली पर आरूढ हो जाये तो हिन्दुस्तान की जयजयकार हो जाये।

# 21. चंद्रशेखर आजाद की ब्रह्मचर्य प्रतिबद्धता

(चार प्रसंग)

बारह वर्षीय बालक चंद्रशेखर एकदा संस्कृत विद्यापीठ में पाणिनी व्याकरण का अध्ययन कर रहा था। "अमरकोष" के श्लोक पूर्ण कर लेने के पश्चात् उसने घोटना प्रारम्भ किया।

एक दिन "भारतमाता की जय" के गगनभेदी नारे सुनाई दिये। आजादी प्राप्ति के आंदोलन का एक जुलूस पास वाले रास्ते से गुजरते हुए ये नारे लगा रहा था। इस नारे ने उनकी अध्ययन की भूख को तत्काल खत्म कर दिया। देश की आजादी के लिये तत्क्षण जीवन-समर्पण किया। उसी वक्त खिड़की से कूदकर जुलूस में शामिल हो गया। जुलूस का नेतृत्व उसने धारण कर लिया। जुलूस के आगे बढने पर उसको गिरफ्तार कर लिया गया। उसे बारह हंटर फटकारने की सजा हुई। हंटर की प्रत्येक मार के कारण उसकी पीठ से खून रिसता था। मांस बाहर निकल आता था। उस समय शक्ति पाने के लिए हर बार वह "भारतमाता की जय" बोला था। तब से लोग उन्हें चंद्रशेखर "आजाद" कहने लगे थे।

आजाद की विवाह योग्य अवस्था होने पर उसकी माता उसकी शादी के लिए बार-बार आग्रह करने लगी। तब एक बार आजाद ने माँ से कहा कि "माँ ! मुझे यदि ऐसी कन्या ला दे जो आजादी की जंग में सीमा पार कर मेरे साथ आने के लिए तत्पर हो, कंधे पर कारतूसों से भरा थैला और राईफल उठाना चाहती हो। मुझे राईफल में कारतूस भरकर देती जाये और मैं गोलियाँ चलाता रहूँ। जब मैं जेल में जाऊँ तब वह अवश्य मेरे साथ आये। हम दोनों लड़ते-लड़ते साथ ही मरें। ऐसी युवती से मैं शादी करना चाहता हूँ।

आजाद पूर्ण ब्रह्मचारी था। ब्रह्मचर्य के पालन में ही वह देशभक्ति की प्रचण्ड शक्ति मानता था। अपने सहायकों को भी वह इस बात के लिये सदैव सावधान रखता था। एतदविषयक उनके जीवन के चार प्रसंग अत्यंत प्रेरक हैं।

(१) आजादी के आंदोलन में आजाद को पैसों की जरूरत पडने पर धनवानों को लूटना शुरू किया। एक बार किसी श्रीमंत के यहाँ उसने अपने साथियों के साथ डाका डाला। मुँह अंधेरा छाया

हुआ था। शोरोगुल होने के कारण घर की रूपवती पुत्रवधू जग गई। चारपाई पर एकदम आकस्मिक ही जगकर बैठ गई, टोली का एक सहायक उसकी सुंदरता को देखकर मुग्ध हुआ और कामुकतावश बलात्कार करने की नीयत से उसकी ओर लपका। वह युवती थरथर काँपने लगी। वह बहुत घबरा गई थी। लूट के माल की गठरी बनाते हुए उस कामुक सहायक पर आजाद की नजर गई। वह चौंक उठा। तुरंत वह उस तरफ लपका। कमर से रिवल्वोर निकालकर धड़ाधड़ तीन गोलियाँ उसकी छाती में उतारकर ढेर कर दिया ! उस युवती के निकट जाकर अश्रुपूरित आँखों से आजाद ने माफी मांगी। लूट का माल छोडकर, मानसिक चोट से कराहता हुआ आजाद सहायकों के साथ कार्यालय वापस लौट गया। सब साथ में बैठे। आजाद की आँखों में अश्रु थे। हृदय में आग धधक रही थी। कुछ देर मौन रहने के बाद, माथा ऊपर ऊठाकर उसने सहायकों से कहा, "देश को आजाद करने का क्या यही तरीका है ? सालों...यदि आपको औरत ही चाहिये तो आप सब घर लौट जाओ और यदि देश को आजाद करने की कसम का पालन करना हो तो कभी ऐसा काम नहीं करना। अन्यथा एक की भूल के कारण मैं आप सबको "शूट" कर दूंगा।"

सभी सहायकों की आँखों से अश्रु बह रहे थे। सबने खड़े होकर भारत-माता के चित्र के सामने कभी ऐसा कार्य नहीं करने तथा...देश के खातिर आत्मबलिदान कर देने की सौगंध ली।

(२) एक बार लुकते-छिपते आजाद ने पण्डित का वेष धारण कर के किसी गाँव के मंदिर में आश्रय लिया था। गाँव के किसी सज्जन की बेटी को संस्कृत पढाने के लिये वह रोज उसके घर जाता था। उसकी आकर्षक देहयष्टि को देख उस विद्यार्थिनी की सहेली उसके प्रति आकर्षित हुई। मौका पाने के लिए वह भी रोज पढाई करने हेतु बैठने लगी।

एक दिन विद्यार्थिनी को अपने समस्त परिवार के साथ बाहर जाना हुआ। आजाद जब उसे घर पढाने के लिए गया तब मादक मुस्कान के साथ सहेली ने स्वागत किया तथा कहा कि ,"आज मुझ अकेली को ही पढाइए।"

पढने के लिए बैठने से पूर्व उसने भीतर से दरवाजा बंद किया। चंद्रशेखर फौरन सब कुछ समझ गया। वह दूसरे माले की खिडकी से सीधे छलांग मारकर मंदिर पहुँच गया। सद्भाग्य से नीचे गिरने

पर भी उसे जरा भी तकलीफ नही हुई।

तत्पश्चात् उसने किसी के भी घर पढाने के लिए जाना हमेशा के लिए छोड़ दिया।

(३) एक बार कार्यालय में सभी मित्रों के साथ आजाद बैठा हुआ था। किसी विषय पर बातचीत चल रही थी। वहाँ यकायक किसी मित्र ने सिनेमा का गीत गाना शुरू किया। उसकी एक पंक्ति का भाव ऐसा था- "हे कामराज ! तुम्हारे बाण मेरे हृदय को छलनी कर देते हैं।"

इस पंक्ति को सुनकर आजाद ने उससे तुरंत कहा,"अरे दोस्त ! हमारे हृदय को तो दुश्मन की गोलियाँ ही छलनी कर सकती हैं। कहीं काम के बाण से हमारे हृदय छलनी हो सकते हैं भला ? ऐसे "क्रान्तिवीर कहलाने लायक कहीं हो सकते हैं ? दोस्त ! क्यों तुम ऐसे गीत गा रहे हो !"

तब से उस क्रान्तिवीर ने ऐसे गीत गाना बंद कर दिया।

(४) एक बार एक सहयोगी बाजार से एक केलेन्डर खरीदकर कार्यालय में लाया। उसमें स्त्री का विभत्स चित्र था। उसने कार्यालय की दीवार पर लटकाया। कार्यालय की मीटिंग में आजाद ने इस केलेन्डर को देखा। तुरंत ही आजाद ने उसके टुकडे करके फाड़ डाला और खिड़की से बाहर फेंक दिया ! यह देख वह सहयोगी गुस्सा हो गया। वह केलेन्डर बहुत कीमती था। अतः उसे आजाद के ऐसे व्यवहार से बहुत दुःख हुआ। उसने उत्तेजित होकर आजाद से कहा- "आपको स्त्री का चित्र अच्छा न लगने पर क्या ऐसे मूल्यवान केलेन्डर की ऐसी दुर्दशा क्या की जानी चाहिए ?"

चंद्रशेखर ने हंसते हुए कहा ,"दोस्त ! हम क्रान्तिवीरों को ऐसे विभत्स कैलेन्डर शोभा नहीं देते हैं। चाहे फिर वे कितने ही महँगे क्यों न हो ?"

यदि भारत की बेनमून कारीगरी के उत्कृष्ट उदाहरणस्वरूप ताजमहल से भी ऐसी विभत्सता टपकती हुई नजर आये तो मैं उसे भी चूर चूर कर दूँ।

यह सुनकर सारे सहयोगी सकते में आ गये। चंद्रशेखर की ऐसी शील प्रतिबद्धता के आगे सबके शीश झुक गये ! ऐसे थे, चंद्रशेखर आजाद ! लाला लजपतराय की करुण मौत का अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने की प्रति लड़ाई में आजाद शहीद हुए। आजाद की शहादत व्यर्थ नहीं गई। उसकी आग से ही भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव आदि अनेक बेजोड़ क्रान्तिवीरों की मशालें जली।।

# 22. श्रेष्ठीकन्या की शीलरक्षा

एक नगर था। उसके नगरसेठ श्रीपतसिंह थे। सुशीला उनकी एकमात्र पुत्री थी।

सुशीला हकीकत में सु-शीला ही थी। माता ने गर्भावस्था से ही उसका संस्करण प्रारम्भ किया। माता की हार्दिक देखभाल का परिणाम अति अद्‌भुत आया था।

सुशीला का जितना उत्कृष्ट बाह्य सौंदर्य था उससे अधिक उत्कृष्ट उसका आंतरिक सौंदर्य था। उसकी अवस्था सोलह वर्ष की हुई। यौवन की उमंग उसके मुखमण्डल पर शोभायमान हो रही थी। वह परपुरूषों से अत्यंत दूरी रखती थी। वह बहुत सतर्क रहती थी। शील उसका प्राण था। प्राण रूपी शील रहित देह का भार उठाने के स्थान पर वह अशील से बदबू मारने वाली देह को भस्म कर देने के लिए तत्पर थी।

बद्‌नसीबी से एक दिन वह घर की पहली मंजिल माले के झरोखे में बैठी हुई थी। रास्ते पर आवागमन करने वाले लोग तथा वाहनों के प्रति वह निर्दोषभाव से देख रही थी।

उसी वक्त नगर के ठाकुर का बेटा घोड़े पर सवार होकर उस रास्ते से गुजरा। वह चारों ओर देखते हुए जा रहा था। उसकी नजर सुशीला की ओर गई। उसके कमनीय मोहक सौंदर्य को देखकर वह दिग्मूढ हो गया। ध्यानपूर्वक उसके घर की निशानी पाकर वह विदा हुआ।

शाम होते ही उसने सुशीला के नाम, नौकर द्वारा चिट्ठी भिजवायी। उसमें ऐसी इच्छा व्यक्त की कि "हम दोनों मिलें।"

सुशीला की समझ में सब आ गया। ठाकुर का बेटा। उसके पास सत्ता थी।...जो चाहे मरजी वो करने के लिए समर्थ था। उसमें भी यह लडका तो अविचारी और असभ्य के रूप में सर्वत्र कुख्यात भी था। उसके विरुद्ध जाने वाले को तो वह दिन में तारे दिखा दे ऐसा था।

कुछ क्षण के लिए सुशीला अत्यंत बेचैन हो गई। वह मात्र सुशील नही थी, अत्यंत चतुर भी थी। उसने एक निर्णय लिया और उसी चिट्ठी में लिख दिया ,"आने वाले शनिचर की सांध्यवेला में मेरे घर जरूर पधारें। हार्दिक स्वागत करूंगी।"

ठाकुर का पुत्र तो यह पत्र पढते ही आनंदित हो गया। बडी मुश्किल से एक-एक दिन व्यतीत करने लगा। शनिचर की प्रतीक्षा करते करते वह परेशान हो गया।

इस तरफ दूसरे ही दिन सुशीला ने अपने फैमिली वैद्यराज को बुलाया। उसने उनसे पूछा कि "वैद्यराज ! पेट साफ लाने के लिए जमालगोटे की कितनी गोलियाँ लेना जरूरी है ?"

जवाब मिला कि "एक गोली तो पर्याप्त है।"

सुशीला ने कहा-"तो वैद्यराज ! मुझे अड्डाइस गोलियाँ दीजिए। उसका जो भी मूल्य हो मैं चुकता कर दूंगी।" वैद्यराज ने पूछा- "बहन ! इतनी सारी गोलियों से तुम्हें क्या काम पड गया ?"

वैद्यराज ! मेहरबानी करके आप मुझ से यह सवाल नही पूछो तो बेहतर होगा।

वैद्यराज अड्डाइस गोलियाँ देकर रवाना हुए।

सुशीला ने उसी दिन से प्रतिदिन दो गोलियाँ सुबह और दो गोलियाँ शाम को लेना शुरू किया। छह दिन में चौबीस गोलियाँ खा जाने के कारण अतिशय दस्त लग गई। भारी मात्रा में मल और पानी निकला। सारे मल-और पानी को अलग अलग मटकों में भरवा लिया। उन सब को ठीक से बंद करवाया। उन पर रंगीन कागज चिपका दिये गये। अपने कमरे में चारों ओर रखवा कर उन पर दशांग धूप और सुवासित अगरबत्तियाँ जलाकर रखवा दी गईं। इससे मल की बदबू बाहर न आये ऐसी परिस्थिति निर्मित हुई। ऊपर से चारों तरफ महक फैल गई।

दूसरी ओर सुशीला का स्वास्थ्य गिरता चला। उसका सौंदर्य और उसमें से निखरने वाला मोहक लावण्य सब खत्म हो गया। उसका मुख निस्तेज हो गया। उसकी मांसल देह सूखकर काँटा हो गई। उसकी आँखों की चमक खत्म हो गई। आँखें गड्ढों में उतर गई। उसकी हड्डियाँ दिखाई देने लगी।

खड़े रह पाने तक की शक्ति भी उसकी देह में रही नही। उसके मुख से बदबू आने लगी। वह अविरत "ओ माँ ! ओ भगवान !" बोलने लगी।

और...सातवें दिन की संध्या का आगमन हुआ। वह ठाकुरपुत्र जिसका अधीरतापूर्वक इन्तजार किया जा रहा था वह क्षण आ गया। अत्यंत ठाटबाट के साथ, उत्सुकतापूर्वक और बडी उम्मीद के साथ वह सुशीला के घर पहुँच गया। दासी उसे सुशीला के कक्ष में ले गई। वहाँ बिछायी और सजायी

हुई सुंदर गद्दी पर बैठने की विनति करके दासी ने कहा कि ,"बहन कुछ ही क्षणों में आ जायेंगी।"

भाई तो यह सुनकर बहुत राजी हुआ। उसे अपनी कल्पना के उस मिलन का दिव्य पल एकदम निकट आता हुआ अनुभव हुआ।

काफी समय व्यतीत हो गया। कोई आया नही। हर पल भाई साहब तो ज्यादा से ज्यादा विह्वल होते गये। अकुलाहट अनुभव करने लगे।

आखिरकार वह स्त्री उस खण्ड में आई। "ओ माँ ! ओ भगवान !" वह बोले जा रही थी। दो दासियों के सहारा लिये वह डगमगाती हुई चली आ रही थी। उसके मुख से अतिशय बास आ रही थी। वह एकदम बुढिया सी दिखाई दे रही थी। उसका मुख कह रहा था मानो वह कई दिनों से बीमार रही हो।

भाई तो उसे देखकर अकुला उठे। वह मन ही मन बोला, "यह कौन सी बला यहाँ आ गई ! वह सुहानी अप्सरा कहाँ है ? मुझे तो उसी से निस्बत है !"

अकुलाकर उसने दासियों से कहा ,"इस बीमार बुढिया को लेकर आप क्यों आयी हैं ? आप अपनी सेठानी को त्वरित बुलाइए, मुझे उनसे काम है।"

तब सुशीला ने कहा,"ठाकुर साहब के मंगलकारी पुत्र ! आप जिससे मिलने और आनंद मनाने के लिये आये हैं, वह मैं ही हूँ , मेरा नाम सुशीला है। मैंने ही आपको इस संध्यावेला में बुलाया है।"

यह स ुनकर ठाकुरपुत्र क्रोधावेश में आकर चीख उठा ,"अरे ! कहाँ तो वह सुहानी कन्या और कहाँ तुम बीमार लडकी ! तुम इतना झूठ बोल लेती हो ! उसके बदले तुम्हें रखकर उसने मेरे साथ धोखा किया है ! विश्वासघात किया गया है! मैं देख लूंगा ! इसका भयानक परिणाम भुगतने के लिए समग्र परिवार को तैयार रहना पडेगा। मेरे साथ कपट हुआ है। आग के साथ खेला गया है।"

मैं कसम खाकर कहती हूँ कि "मैं वही सुशीला हूँ। तुम्हारी आँखों में बसी हुई मोहिनी कन्या हूँ। आप ऐसा मत कीजिए। ऐसे उत्तेजित न हों। हमने आपके साथ जरा भी घोखा नहीं किया है।"

भाई तो आश्चर्यचकित हो गये। उसने तनिक शांत होकर कहा- "पर वह तो कितनी सुंदर थी ? वह सौंदर्य, वह लावण्य, वह मोहिनी, वह लालचटख लहू और मांसल अंग...कहाँ हैं ? यहाँ तो कुछ

भी नजर नही आता है ?"

सुशीला ने धीमे फिर भी रूक-रूककर कहा -"यदि आपको वह सौंदर्य ,वह लावण्य ,वह मोहकता, वह रक्त और मांस चाहिए , यदि आप जिसे भोगने के लिये आये हैं , यदि उसे भेंटना चाहते हैं तो वह सब जिस में चला गया है, वह सब सँजोकर रखा गया है। उसे आप चाहें, उससे प्रेम करें, उसे आश्लेष में लें।"

अन्यथा यदि आप सुशीला की आत्मा को ही चाहते हैं तो, मैं स्वयं हूँ।" ऐसा कहकर सुशीला ने दासियों द्वारा मल-विष्टा से भरे घडे खुलवा दिये, धूप और अगरबत्तियाँ दूर हटवा दी। क्षणमात्र में सारे खण्ड में असह्य बदबू फैल गई। भाई ने नाक पर रूमाल रख दिया वह एकदम खड़ा हो गया ! सुशीला ने कहा,"इस विष्टा में मेरी सुंदरता बह गई है। आपको मेरी सुंदरता ही प्रिय है तो उसे आप अपने साथ ले जाइए।"

यह सुनकर भाई को सौंदर्य की क्षणिकता तथा विष्टा जनित जुगुप्सा आदि का यथार्थ रूप में समझ में आ गया । उसे उस रूप और लावण्य के प्रति विराग हो गया। उसकी कामवासना खत्म हो गई। वह सीधे सुशीला के पास पहुँच गया और उसके पैरों में गिरकर उससे क्षमा मांगी। सुशीला ने युक्तिपूर्वक शीलरक्षा को सिद्ध किया।

## 23. वह व्रत जगदीपक

"हे त्रिलोकनाथ परमात्मा नेमिनाथजी ! मेरी भावना थी कि मैं उत्तम रसोई पकाकर आपके सारे शिष्यों को वोहराऊँ और उसका पुण्य अर्जित करूँ पर जब उस ढंग से मुनि के निमित्त ही पकायी गई रसोई अकारण वहोराने में आप बड़ा दोष बता रहे हैं और ऐसा करने से निषेध कर रहे हैं, इससे मेरी आत्मा उद्विग्न रहती है।"

परमात्मा ने कहा , "वत्स ! तुम उद्वेग मत करो। उतना ही लाभ तुम्हें प्राप्त हो ऐसा अन्य रास्ता

दिखा रहा हूँ। सुनो।

इस धरती पर जन्म लेकर विजय और विजया नामक अत्यंत उच्च कोटि के दो विवाहित धर्मात्मा अपना जन्म सार्थक कर रहे हैं। अविवाहित अवस्था में उनमें से एक ने शुक्ल पक्ष के पंद्रह दिन के लिए अविरत ब्रह्मचर्य पालन तथा दूसरे ने कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य पालन के लिये अभिग्रह रखा था। योगानुयोग उन दोनों का विवाह हुआ। विवाह की प्रथम रात्रि में इस बात का रहस्य खुला। दोनों ने तनिक भी खिन्नता अनुभव किये बिना आजीवन शीलपालन का प्रारम्भ कर दिया। वत्स वे मनसा, वाचा, कर्मणा निर्मल शील का पालन कर रहे हैं, उन्होंने यह बात अपने माता-पिता को भी नहीं बतायी है।

"यदि तुम उन्हें अपने घर लाकर एक वक्त के लिए ही उनकी उत्तम रूप से भोजनभक्ति करो तो तुम्हें चौरासी हजार साधुओं को भिक्षादान करने जितना पुण्य प्राप्त हो जायेगा।"

प्रभु की वाणी सुनकर वह श्रावकजी विजय के घर गये। उस समय पति-पत्नी सामायिक में लीन थे। उनके माता-पिता से बात की तब माता-पिता को पता चला कि उनका पुत्र और पुत्रवधू आजीवन शील-पालक हैं !

श्रावकजी ने अपने घर ले जाकर उत्तम प्रकार से भक्ति की और अपना जीवन धन्य बनाया।

## 24. शील के लिए भाई ने बहन की गरदन कलम कर डाली

रेल्वे स्टेशन के निकटस्थ वह एक छोटा सा गाँव। मुश्किल से बारह सौ लोगों की बस्ती थी। वह अभी पाश्चात्य हवा के असर से मुक्त था। अतः गाँव में न्याय, नीति, शील आदि के दर्शन होते थे। व्यापारी नीतिशील थे। नारियाँ बुजुर्गों का लिहाज करती थीं। युवतियाँ युवाओं से बात करने से डरती थीं।

छोटे से इस गाँव में सारे लोग हर तरह से सुखी थे।

क्या पता ? यह गाँव अभिशप्त हुआ।

एकदा दिन-दहाडे मध्याह्न वेला में डाकुओं की टोली ने धावा बोल दिया।

सब के मन में था कि यह चोर टोली धन लूटकर चली जायेगी।

परंतु उन लोगों ने तो नारी के शील को भी हाथ लगाया। किसी युवती को घसीट कर छोटे से घर में ले जाकर सामूहिक बलात्कार किया। अभागिनी नारी की चीखें सुनते ही युवानों का खून खौल उठा। जिसे जो भी हाथ लगा वह हथियार लेकर लूटेरों का सामना करने के लिए दौड़ पड़े। अब तो इस पार या उस पार वाला खेल प्रारम्भ हुआ।

उभय पक्ष में जवान मौत की गोद में सोने लगे। अनेक लोगों के रक्त से धरती रक्तरंजित हुई। उस दशा में एक बीस वर्षीय मुच्छड़ युवक कमर में तलवार बांधकर अपनी सोलह वर्षीया बहन को लेकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

रात हो गई थी। लगभग नौ बज रजे थे।

स्टेशन जाकर उसने स्टेशन मास्टर से सहायता मांगी। लूटेरों के भय से आक्रांत स्टेशन मास्टर ने विवशता जताते हुए कहा, "वह दूर जो लालटेन टिमटिमा रही है, वहाँ एक छोटा सा घर है। आप वहाँ चले जाओ और रात बिता लो।"

भाई-बहन वहाँ गये। भीतर के कमरे में बहन को सुलाकर भाई चौकी करते हुए जगता रहा।

भाई को बहन बहुत प्रिय थी। बहन को अपना भाई बहुत प्यारा था। पर हाय ! लुटेरों में से तीन लोग इस भाई-बहन का पीछा कर रहे थे। वे उस बहन से दूराचार करने के लिए हाथ मंज रहे थे।

मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि एक लुटेरे ने भाई को ललकारते हुए हाँक भरी। ऊँची आवाज सुनकर बहन बाहर निकल आई। लालटेन के धुंधले उजाले में उसे लुटेरे की आँख में विकार दिखाई दिया। वह रणचण्डी हुई।

जो भी हाथ लगा, उससे लुटेरों को पीटने लगी। अफसोस ! बहन की युक्ति लम्बी चली नही। उसे झोंपडी के खम्भे के साथ कसकर बांध दिया। लुटेरे पहले भाई को खत्म करना चाहते थे। बाद में वे अपनी मौज मनाना चाहते थे।

खम्भे से बंधी बहन बहुत क्रुद्ध थी। उसने भाई को थरथर काँपता हुआ देखा। वह समझ गई कि भाई घबरा गया है। वह दुश्मनों को अंकुश में लेने का प्रचण्ड सामर्थ्य रखता था फिर भी वह लाचार नजर आ रहा था।

लुटेरे बहन की ओर देखकर हंस रहे थे और उसके सामने अश्लील नखरे दिखा रहे थे।

एक ने कहा-"अब होशियारी मत दिखा। तुम्हारे भाई को खत्म करके देखना तुम्हारी कैसी दुर्दशा करते हैं।

अब तो अमृत का प्याला हमारे होठ तक आ गया है।""

यह शब्द सुनकर बहन जख्मी शेरनी सी हो गई। वह ऐसी चीखी कि लुटेरे सकते में आ गये।

उसने भाई से कहा , "देख क्या रहा है ? कायर होकर ऐसे क्या कांप रहा है ? तुमने क्षत्राणी का दूध पिया है। तुम्हारी ऐसी निर्माल्य दशा ! यदि तुम्हारे अंदर ताकत हो तो टूट पड़ , नंगी तलवार के साथ इन तीन शैतान नराधमों पर। एक पल का भी विलम्ब किये बिना।"

पर भाई तो एकदम घबरा गया था। बहन ने देखा कि अब भाई की मौत निश्चित है और मेरा शील लुट जायेगा।

उसने भाई को गर्जना करते हुए कहा ,"ओ मेरे वीर ! तो अब जाने दे सारी बातें। तुम यदि उन नराधमों से डर गये हो तो म्यान से तलवार खीचकर मेरी गरदन उडा दो , मेरी शीलरक्षा तो करो। मुझे तो सम्पूर्णतया दोष मुक्त रहकर मरने दो।"

यह शब्द सुनकर सैकण्ड के सौ वे हिस्से में भाई ने तलवार खींच निकाली और लुटेरे कुछ समझे या करें उससे पहले बहन की गरदन काटकर धरती पर धर दी।

बहन मर गई। शील जिंदा रहा।

शिकार हाथ से छूट जाने के कारण लुटेरे भाग निकले।

दूसरे ही क्षण भाई ने अपने गले को तलवार से रेत दिया।

# 25. तब सीता मुझे माँ दिखाई दी

रावण ने सीता का अपहरण कर लिया। उसे अशोकवाटिका में कड़ी निगरानी में रखा गया।

रावण ने युवावस्था में ज्ञानी गुरु से प्रतिज्ञा ली थी कि, "परस्त्री को मैं अपनी पत्नी न बनाऊँ तब तक मुझे उस पर बलात्कार नहीं करना है।"

इस प्रतिज्ञा का पालन रावण ने आखिरी साँस तक दृढतापूर्वक किया था। उसने सीता को पत्नी बनाने के लिए अलग अलग ढंग से समझाया, परंतु सीता टस से मस नहीं हुई। हाँ कई बार रावण उसे बलात्कार करने की धमकी देता था अवश्य, पर ऐसा काम उसने कभी किया नहीं था। रावण ने पटरानी मंदोदरी को सीता के पास भेजा था।

मंदोदरी ने सीता को समझाने में कोई कसर नहीं छोडी, परंतु लंका की महासती द्वारा अयोध्या की महासती को सतीत्व का त्याग करने की सलाह देनी पड़ी। यह उसके लिए अत्यंत आघातजनक हुआ था। मंदोदरी ने सीता को पटरानी का ताज देने का लालच भी दिया था।

परंतु उस दंपत्ति की सीता के आगे एक न चली।

एक बार रात्रिवेला में रावण चिंतातुर और हताशावस्थावश करवटें बदलता रहा था तब रात्रि के बारह बजे उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण भटकता हुआ वहाँ पहुँच गया। बड़े भैया के कमरे में नजर डालने पर उसे पता चला कि भाई अभी तक सोया नही है। उसने कक्ष में प्रवेश किया। भाई धीमी आवाज में "सीते सीते" बोल रहा था।

छह महीने की घोर निद्रा के महाप्रयत्न से कुम्भकर्ण आज जगा होने के कारण उसे लंका की इन सारी घटनाओं के बारे में कुछ पता नही था।

बड़े भैया ! रात के बारह बज गये हैं। अब तक नींद क्यों नहीं आ रही। कुम्भ ने पूछा।

पलंग पर अपनी बगल में कुम्भकर्ण को बिठाकर रावण ने सारा हाल बताया।

कुम्भकर्ण ने कहा ,"भाई ! आपने अपनी युवावस्था में एक हजार विद्याओं को सिद्ध किया है। कई तो देवों ने आपको प्रसन्न होकर दी हैं। उनमें रूपपरावर्तिनी नामक विद्या है। आप उसका जाप

कीजिए । विद्यादेवी हाजिर हो जायेंगी । उसे आप कहिए कि ,"मुझे हू-ब-हू राम का रूप प्रदान करे।""तत्पश्चात् कुछ ही देर में आप राम जैसे हो जायेंगे । इस प्रकार राम बनकर आप सीता के पास पहुँचिए । आपकी इच्छा पूर्ण हो जायेगी ।

यह बात सुनकर रावण ने वेदनामिश्रित रूखा हास्य करते हुए भाई से कहा,"ओ कुम्भ ! क्या तुम्हारे भाई के मन में ऐसा विचार नहीं आया होगा ? क्या उसने एक पल के लिये भी विलम्ब किया होगा ।

क्या तुम अपने भाई को इतना बुद्धू समझते हो ?"

तब तो भाई ! फिर क्या हुआ ? सीता ने आपको नकली राम के रूप में पहचान लिया ? और इस वजह से आपकी इच्छापूर्ति नही हुई ?" कुम्भकर्ण ने एक ही साँस ने पूछ लिया ।

रावण ने कहा, "मूर्ख शिरोमणि ! तुम जरा शान्ति रखो । मेरी पूरी बात ठीक से सुनो । अधीर न हो।"

बात यूँ हुई कि विद्यादेवी का जाप करते ही रूपपरावर्तिनी उपस्थित तो हो गईं । मैंने अपना प्रस्ताव रखा । उसने भी तथास्तु भी कह दिया और मैं हू-ब-हू राम बन गया । मैं जैसे ही राम हुआ कि मेरे अंतरतम में विचारों के कर्णभेदी चिन्तन-मंथन का उमड़-घुमड़ शुरू हो गया ।

सब से पहले मेरी नजर में कुबेर आया । मैंने उसका सर्वस्व हड़प लिया था । अतः मानों मुझे कोई कहने लगा कि ,"ओ लंकेश रावण ! कुबेर को उसका सर्वस्व लौटा दो । तुम्हारे लिए ऐसा करना शोभा नहीं देता ।"

कुछ देर बाद मुझे वहाँ विभीषण दिखने लगा । वह मुझे कहने लगा, "बड़े भैया ! अब भी देर नही हुई है ।

आप सीता को उसके पति को सम्मानपूर्वक सौंप दो । अन्यथा आपका "मैं" आप ही को खा जायेगा । युद्ध में तुम्हारा शीश और धड़ मिट्टी से रंग जायेगा ।"

उसी वक्त लंका की धरती की अधिषत्री देवी लंकिनी मेरे समक्ष आ खडी हुई । क्रोधवश कहने लगी ,"ओ राजा रावण ! तुमने परनारी के अपहरण का काला पाप करके लंका की धरती को काजल

से भी काला कर दिया है। इससे मैं शर्मसार हूँ। तुम अब लंका छोड़कर दूर चले जाओ।"

लंकिनी जा ही रही थी कि तुम्हारी भाभी आ गई। अश्रुपूरित नेत्रों से उसने मुझ से पूछा-"हे प्राणनाथ ! मेरे रूप में आपको कौनसी कमी नजर आई कि आप परनारी के लिए पागल हुए हैं ? क्या आपको मेरे सतित्व में कोई कसर दिखाई दी है कि आप उस महासती को उठा लाये हो ?

ओ प्राणेश्वर ! यदि आपको राक्षस कुल की इकत्तर पीढियों को इस प्रकार कलंकित करनी है तो पहले मुझे विषपान करा दीजिए।"

कुम्भकर्ण ! बारी-बारी से सबने कड़े शब्दों में मेरी खबर ले ली है। मैं तो एकदम विमूढ हो गया। बाद में मैं हू-ब-हू राम हो गया हूँ या नहीं, यह निश्चित करने के लिए मै इस विशाल दर्पण के सामने खड़ा रहा।

जिस क्षण मुझे दर्पण में मेरे रामस्वरूप के प्रतिबिम्ब के रूप में श्रीराम दिखे तब ओ कुम्भ ! सीता मुझे माँ के स्वरूप में दिखी। अब तुम ही कहो कि मैं उसकी और कैसे आगे बढ़ूँ"

यह शब्द सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा ," हमारे दुश्मन राम के सहचर्य मात्र से बड़े भैया की भावनाओं में बदलाव आने लगा , जिसके प्रतिबिम्ब के दर्शन मात्र से परनारी के प्रति कामवासना नामशेष हो गई , उस राम को मेरी कोटि कोटि वंदना।"

तुलसी महाराज की उस पंक्ति का सहज स्मरण हो आता है,"जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम वहाँ नहीं राम।""

# 26. सीता को उठाते समय क्या रावण ने सीता का स्पर्श नहीं किया था?

(अजैन रामायण प्रसंग)

बड़े भाई राम महासत्वशील हैं । वे संकट से मुक्त ही हैं, उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता होगी ही नही । ऐसा लक्ष्मण के स्पष्ट कहने पर भी सीता आश्वस्त नही हुई । उन्होंने बड़े भैया राम की सहायता हेतु जाने के लिए लक्ष्मण पर भारी दबाव डाला।

अवश होकर लक्ष्मण तैयार हुए । उन्हें किसी अमंगल घटित होने की आशंका थी। अतः भाभी किसी संकट में फंस न जाये, इस आशय से कुटिर के दरवाजे पर रेखा खींच दी थी और उसे नहीं लांघने की सूचना भाभी को दे दी थी । पर भला नियति को कौन मिथ्या कर सकता है ? सीता भाभी ने उस रेखा को पार कर लिया और संकट मोल लिया ।

हुआ ऐसा कि रावण ने सीता का अपहरण करने के लिए, राम को सीता से अलग करने का फरेब रचाया था । उसकी योजना सफल हुई थी । राम और लक्ष्मण दोनों सीता से अलग हो गये थे। अब रावण ने भगवा वेश धारण करके सीता को उठा लेने के व्यूह को अमलीजामा पहनाया ।

"ओ बाई ! मुझे भिक्षा दो ।" भगवा वेशधारी रावण ने सीता से कहा ।

"महाराज ! इस कुटिया में आप पधारिये । आपको भिक्षा दे रही हूँ ।" सीता ने कहा।

रावण ने मन ही मन विचार किया कि ,"मैं भगवे वस्त्र में सज्ज हूँ । इन कपड़ों में यदि मैं रेखा (मर्यादा) को पार करूँ तो मेरा भगवा वस्त्र लज्जित होगा ।" अतः रावण ने सीता को रेखा पार करके आने के लिए समझाने पर, भोली सीता ने रेखा को पार कर लिया । उपरांत रावण के मन में विचार आया कि ,"भगवा वेश में नारी का अपहरण नहीं किया जा सकता । अतः तत्क्षण रवण ने भगवा वस्त्र शरीर पर से उतार फेंका । अब सीता को उठाना था किन्तु परनारी जब तक पत्नी बनने के लिए राजी न हो तब तक उसे कैसे छुआ जाये ? यह तो बहुत बडा पाप कहलाये । ऐसा सोचकर रावण ने बड़े-बड़े नाखूनों वाले दोनों हाथ सीता के दोनों ओर की जमीन में सीधे उतार दिये । धरती का पूरा टुकडा उठा

लिया। जिसमें सीता को भी उठा लिया गया और रावण वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उस टुकडे के साथ सीता को विमान में रखा और उस टुकडे के साथ सीता को लंका की जमीन पर उतारा।

एक दिन की बात है। किसी फुरसत के क्षणों में अयोध्या धरती के पवित्र टुकडे पर बैठी सीता से बतियाने के लिए पहरा दे रही रावण की सेविका राक्षसी त्रिजटा आई। बात ही बात में उसने सीता से कहा कि, "तुम लंकापति की शरण में क्यों नहीं जाती ? यदि तुम उनकी शरण स्वीकार कर लो तो राम-रावण के मध्य होने वाले भयानक युद्ध तथा उससे उभय पक्ष के हजारों युवानों की मौत होगी , उनकी पत्नियाँ विधवा हो जायेंगी, माताएँ असह्य रुदन करेंगी-यह सब रुक जायेगा। इससे महाअनर्थ नही होगा। उसका सारा श्रेय तुम्हें प्राप्त होगा। "आगे बढकर उसने सीता से कहा कि "मेरी समझ में यह नहीं आ रहा कि इतनी सी सीधी-सादी बात तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आती ?"

सीता ने कहा कि ,"उसका कारण मैं जिस पर बैठी हूँ , वह धरती का अंश है। यह अंश अयोध्या की पवित्र धरती का अंश है। ओ बाई ! मैंने लंका की जमीन को कभी छुआ नहीं है। इसलिए मेरी बुद्धि निर्मल रह सकी है। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट होने की वजह लंका की भ्रष्ट धरती का तुम्हें अनवरत हो रहा स्पर्श ही है।

"अब तुम्हारी दूसरी बात का जवाब दे रही हूँ। तुम्हारी बात नितांत सच है कि यदि मैं लंकापति की शरण लूँ तो युद्ध होने से लाखों स्त्रियाँ विधवा होने से बच जायेंगी पर मेरा तुम्हें प्रतिप्रश्न यह है कि इस प्रकार शरण ग्रहण करने से अनागत में होनेवाली करोडों भारतीय नारियाँ मेरा सबक लेकर कुलटा बन जायेंगी उनका क्या ? जब भी किसी परपुरूष के दबाव में भारतीय नारियाँ आयेंगी तब वे मुझे याद करके कहेंगी कि ,"यदि सीता जैसी सत्वशील स्त्री भी अंततोगत्वा परपुरूष रावण की शरण में गई तो हम तो किस खेत की मूली ! चलो,हम भी उनका अनुकरण करते हैं।" "ओ बाई ! अब तू ही मुझे बता कि दो विकल्पों में से एक में लाखों स्त्रियाँ विधवा होती हैं तो दूसरे पक्ष में करोडों स्त्रियाँ कुलटा होती हैं। अब मैं कौन सा विकल्प स्वीकार करूँ ?"राक्षसी ने कहा , भले युद्ध हो और उससे लाखों स्त्रियाँ विधवा हो जाये पर उससे बचने के प्रयास में यदि करोडों स्त्रियाँ कुलटा होने वाली हों तो वह विकल्प अस्वीकार्य है।" सीता की निर्मल बुद्धि को प्रणाम करके राक्षसी वहाँ से विदा हुई।

# 27. कामुम को माँ बनाया

तब दिल्ली पर औरंगजेब का शासन चल रहा था। वह हिन्दू प्रजा पर जुल्म ढाता था। मानो उसने वैदिक धर्म को नामशेष कर देने की कसम खा रखी थी। वह स्वरदेवी का कट्टर दुश्मन था।

वह सत्तांध शासक होने के साथ धर्मांध भी था।

उसने अपने तीन सगे भाइयों को मौत के घाट उतार दिया था। पिता शाहजहाँ को कैद करके परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

उसने "या तो सुलह या संग्राम" की नीति हिन्दू राजाओं के समक्ष रखी थी।

इतना सब होने पर भी पराक्रमी राजाओं ने उसकी नींद हराम करने में या उसे सुख-चैन से जीने नहीं देने में कोई कसर छोडी नहीं थी। पंजाब से गुरू गोविंदसिंह, राजस्थान से वीर दुर्गादास, महाराष्ट्र से छत्रपति शिवाजी और मध्यप्रदेश (बुंदेलखण्ड) से महाराजा छत्रसाल आदि हिन्दुत्व की रक्षा हेतु इस धर्मांध शासक के बराबर पीछे पड़ गये थे। इसी लिए मुगल सल्तनत के अंत का प्रारम्भ हो चुका था।

इनमें से महाराजा छत्रसाल के जीवन की एक घटना खास जानने योग्य है। उन्होंने कामुक बनकर आयी हुई स्त्री को राजमाता बनाकर कमाल कर दिया था।

बात कुछ ऐसी है कि वीर छत्रसाल के पराक्रमों की बातें सुनकर एक युवती उनके पीछे पागल हो गई थी। यह युवा राजा जितना शौर्यवान था उतना ही रूपवान भी।

उस औरत ने उन्हें फंसाने के लिए एक जाल रचाया।

महाराजा महादेवजी के उपासक थे। हमेशा मंदिर जाते थे। कुछ समय ध्यान धरते थे। बाद में पुनः घर लौटते थे। जब वे राजधानी में होते थे तब दर्शनार्थ मंदिर जाने का उनका कार्यक्रम अवश्य बनता था।

युवती ने इस बात की तथा समय इत्यादि की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। बाद में महाराजा के आगमन के वक्त ही, वह सोलह शृंगार सज-धजकर महादेवजी के शिवलिंग के समक्ष अपूर्व नृत्य

करती थी। जब महाराजा मंदिर में पधारते थे तब तो उसका नृत्य पराकाष्टा पर पहुँचता था।

महाराजा को इस नृत्यदर्शन में आनंद आया। नृत्य संपन्न होने तक वे मंदिर में ध्यानस्थ होकर बैठे रहते थे।

एक दिन छत्रसाल ने उस युवती का नाम-पता पूछा। उसका पता लिख लिया। उसकी नित्यप्रति की नृत्यभक्ति की अत्यंत सुंदर शब्दों में अनुमोदना की।

युवती को ऐसा लगा कि महाराजा बराबर उसके प्रति आकर्षित हो चुके हैं, अन्यथा नाम-ठाम क्यों पूछने लगे।

कई दिन तक उसने महाराजा के गृह आगमन की प्रतीक्षा की, वह अधीर हो गई। जब उसे उसमें निष्फलता मिलने का अहसास हुआ तब वह एक दिन खुफिया रूप से राजमहल में चली गई।

महाराजा ने उसे पहचान लिया और उसका सत्कार किया। इस प्रकार स्त्री को एकांत में नहीं आना चाहिए। ऐसा तनिक कड़े शब्दों में कहकर आने की वजह पूछने पर उसने बताया कि वह दुखिया स्त्री है। वह हू-ब-हू उनके जैसा ही पुत्र चाहती है। यदि महाराजा सचमुच परदु:खभंजक का विरुद सार्थक करना चाहते हों तो उसे ऐसे पुत्र का उपहार दें।

महाराजा सारा मर्म समझ गये। उन्होंने कहा "मैं सच में परदु:खभंजक हूँ। मुझे ऐसे विशेषण से गौरव का अनुभव होता है। मैं तुम्हारे दु:ख का निवारण अवश्य करूँगा पर वह तुम्हारी योजना के अनुसार नहीं ,मेरी योजना के अनुसार।"

ऐसा कहकर महाराजा ने कहा, "आज से मैं तुम्हारा पुत्र। तुम मेरा स्वीकार करो ,मेरी माँ बनो।"

वह युवती तो यह सुनकर अत्यंत लज्जित हो गई। अब वह कहे तो भी क्या ? लज्जित होकर वहाँ से चल दी। महाराजा ने दूसरे ही दिन उसे सार्वजनिक रुप से "राजमाता" का विरुद देकर सम्मानित किया।

युवती ने कहा,"बेटा ! तुम मेरे पुत्र नही पर धर्मपुत्र हो। मैं तुम्हारा इस रूप में स्वीकार करती हूँ।"

# 28. कैसा सहज सदाचारी युवक विमल!

भविष्य में लाट देश के जो दण्डनायक होने वाले थे, जैनसंघ के संघपति होने वाले थे, अपूर्व जैन मंदिरों के निर्माता होने वाले थे ऐसे विमलमंत्री की अवस्था जब मात्र इक्कीस वर्ष की थी उस समय की यह घटना है।

अत्यंत सुहावना विमल रास्ते पर से गुजर रहा था।

तब आकाश मार्ग से भगवान नेमिनाथजी की अधिष्ठायिका देवी अंबिकाजी गुजर रही थीं। उन्होंने धरती पर गुजरते हुए विमल को देखा। उसके ललाट पर तपता हुआ तेज देखकर उन्होंने अवधिज्ञान का उपयोग रखकर देखा कि यह लडका भविष्य का धर्म और कर्म दोनों क्षेत्रों का महापुरुष है।

देवी के मन में विचार आया कि ऐसे भावी महापुरुष की आत्मा निश्चित रूप से अगणित गुणों से संपन्न होगी। उसमें भी उसका सदाचार गुण तो अतिउत्कृष्ट होगा। देवी के मन में उसकी कसौटी करने की इच्छा हुई।

उन्होंने पलभर में अतिसुंदर षोडशी कन्या का रूप लेकर धरती पर अवतरण किया। विमल के सामने से आकर उन्होंने विमल को प्रणाम किये। विमल ने भी प्रतिनमन किया। अपने चंचल नेत्रों तथा मुस्कान द्वारा उन्होंने विमल में वासना जगाने का प्रयत्न करते हुए पूछा "युवान। तुम बहुत सुंदर हो। मैं भी कोई कम सुंदर नहीं हूँ। तनिक मेरी ओर तो देखो और मुझे बताओ कि मुझमें किसका दर्शन होता है ?"

विमल ने कहा, मेरी माता ने मुझे जो आँखें दी हैं और जो संस्कार दिये हैं, उसके सहारे मैं एक आँख से परस्त्रियों को माँ के रूप में देखता हूँ और दूसरी आँख से सगी बहन के रूप में, अब मेरे पास तीसरी आँख तो है ही नहीं।

अतः तुम मुझे अन्य किसी स्वरूप में दिखती नहीं हो।"

इस जवाब से देवी अधिक प्रसन्न हुईं और उन्होंने साक्षात् दर्शन देकर वरदान दिया।

# 29. जयशिखरी

जयशिखरी शंखेश्वर-तीर्थ के बगल में बसे पंचासर नामक गाँव का राजा था।

अप्रतिम शौर्य का जीता जागता रूप। राजभुवड़ से हुई लड़ाई में उसका शिरोच्छेद हो जाने के बाद भी मात्र धड़ से कुछ समय तक लड़ता रहा। उस लड़ाई में उसने शत्रुसेना के असंख्य सिपाहियों का शिरच्छेद कर दिया था।

ऐसे प्रचण्ड शौर्य की प्राप्ति के पीछे जयशिखरी की माता निमित्त स्वरूप थीं। वह उत्कृष्ट कक्षा की नखशिख शीलवती नारी थी।

जब जयशिखरी छोटा बालक था तब एक बार जयशिखरी के राजवी पिता मध्याह्न वेला में एकाएक अंत:पुर में रानीमाँ के पास गये। हाँ, वे कामार्त्त हुए थे अवश्य। अतः अचानक रानीमाँ के पास आना हुआ था। बाल जयशिखरी पालने में था। इस बात का खयाल न तो राजा के मन में ही आया और न रानी के मन में आया।

लाज-मर्यादा परे रखकर राजा ने रानी को प्रगाढ आलिंगन में लिया और दो-चार बार चुम्बन भी किया।

अचानक रानी को बालक की याद आई। उसने धक्का देकर राजा के आश्लेष से मुक्ति पा ली।

रानीमाँ ने राजा से कहा,"अरे, अरे. यदि बालक हमें इस दशा में देख रहा होगा तो उस पर काम के कैसे संस्कार पड़ जायेंगे ?"

इतना कहकर उसने पालने में देखा तो पता चला कि बच्चा उन्हें ही देख रहा था।

रानी को गहरा आघात पहुँचा। उसने सोचा कि ,"मेरी यह संतान निश्चित ही व्यभिचारी होगी।"

रानी ने जीभ कुचलकर मरने का प्रयत्न किया। रात्रि के बारह बजे उसे सफलता मिली। रानीमाँ ने आत्महत्या कर ली ! जिसकी माता इतनी महान् शीलवती हो, उसकी संतान अप्रतिम शौर्यवान हो यह स्वाभाविक ही है।

# 30. ज्ञानी को वासना कभी भी प्रभावित नहीं कर सकती

वनवास के दिनों में, एक बार किसी सुरम्य स्थान पर कुटिर बना रहे राम ने लक्ष्मण से कहा, "आज मैं लकड़ियाँ लेने के लिए जाऊंगा। हमेशा तू ही जाता रहे यह मेरे लिए शोभास्पद नहीं है।"

लक्ष्मण के द्वारा भाभी के साथ रहने का आग्रह किये जाने पर भी राम अपनी बात पर अटल रहे।

लक्ष्मण कुटिर के बाहर बैठे हुए थे। घरकाम से निवृत्त होकर सीता उनकी बगल में बैठ गईं। कुछ ही देर में नींद लगने पर सीताजी ने देवर की गोद में अपना मस्तक रख दिया। सीताजी तो गहरी नींद में सो गईं। देवर –भाभी को दूर से देखते ही लकडी की गठरी लेकर वापस लौट रहे राम को मन में खटका लगा।

अपनी चिन्ता से मुक्त होने के लिए राम ने तोते का रूप लेकर पेड पर बैठे बैठे लक्ष्मण से पूछा कि ,"पका हुआ फल, खिला हुआ पुष्प तथा एकदम जवान स्त्री को देख किसका मन चलित नहीं होगा?"

यह सुनकर लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि "जिसके पिता नितांत पवित्र हो , माता पतिव्रता हो , ऐसी संतान का मन वह सबकुछ देखकर भी कभी चलित नहीं हो सकता।"

तोते ने पुनः प्रश्न किया कि ,"पुरुष घी जैसा है, स्त्री आग समान है। इन दोनों का सम्बंध हो तो क्या कोई बच सकता है भला ?"(लक्ष्मण की गोद में सीता सटकर सोयी हुई है। इसलिए ऐसा भय व्यक्त किया गया है )

लक्ष्मण ने कहा, "हे शुकश्रेष्ठ ! तुम्हारी बात सौ प्रतिशत सही है। मदोन्मत्त हाथी की भाँति जिसका मन चारों ओर उछलकूद मचाकर सब तहस-नहस कर सकता है परंतु ज्ञानयोगी आत्मा के साथ मन कुछ भी नहीं कर सकता है।"

तोते के स्वरूप में रहे राम को लक्ष्मण भैया के खुलासों से बहुत संतोष प्राप्त हुआ। ऐसा भाई पाने के कारण उनकी प्रसन्नता और बढ गई।

राम ने पुनः अपना मूल रूप ले लिया और लक्ष्मण को आश्लेष में ले लिया।

# 31. संघमाल कौन पहने?

कहा जाता है, कि उस जमाने में नौ अरब रुपियों की लागत से राणकपुरजी के जिनालय का निर्माण हुआ था। बहुत धूमधडक्के के साथ प्रतिष्ठा हुई। वहाँ से तुरंत शत्रुंजय तीर्थ के संघ का प्रस्थान हुआ। हजारों यात्री, सैंकडों श्रमण और श्रमणियाँ छ्रिपालित संघ में जुड़े थे।

धन्नाशा संघपति थे। उनकी युवावस्था थी।

जिस दिन संघ ने पालिताणा में प्रवेश किया ,उस दिन भारत के विविध स्थलों से निकले अन्य बीस छ ″रीपालित संघों ने भी प्रवेश किया था।

इक्कीस संघ में इक्कीस धुरंधर आचार्य थे। सभी संघपति श्रावक अरबोपति थे।

संघमाल पहनने के लिए चढावा (बोली) बोलना जरूरी था। सभी आचार्य एकत्र हुए। उनको इस बात को लेकर चिंता हुई कि यदि धन के माध्यम से बोली लगी तो शाम तक अंत नहीं होगा क्योंकि अबजोपति पुण्यात्मा धन का कातिल जहर उतारने के इस अवसर को गँवाना नहीं चाहते थे। अब क्या किया जाये ? अंततोगत्वा सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि प्रत्येक संघपति अपने भावि सुकृत की घोषणा करे। उस सुकृत की श्रेष्ठता के क्रमानुसार संघमाल पहनायी जाये।

संघपतियों ने सुकृत बताये। किसी ने पांच करोड रूपियों का दान करने, किसी ने एक और महासंघ निकालने तो किसी ने दस शिखरबंध जिनालयों का निर्माण करने की घोषणा की।

पर जब किसी ने अपने बेटे को दीक्षादान करने की घोषणा की तब सन्नाटा छा गया।

उसी समय राणकपुर तीर्थ के निर्माता धन्नाशा सपत्नीक खड़े हुए। उन्होंने अपने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यपालन के सुकृत की घोषणा की।

आचार्य संघ के अग्रणी भगवंत ने घोषणा की कि संसार में रहकर ऐसी भरी जवानी में और भरपूर अमीरी के मध्य पूर्ण ब्रह्मचर्यपालन करना अति दुष्कर है। मैं इस युगल को प्रथम संघमाल के लिए घोषित करता हूँ।

सर्वत्र आनंद की लहर दौड़ गई।

# 32. युवा अर्थात् काम का दास!

राजा ने कभी फुर्सत के क्षणों में हल्की-फुल्की बातें करते हुए प्रधान से कहा कि "हमारे नगर में ऐसे कितने पुरूष होंगे जो अपनी पत्नी के अधीन रहकर जीवन व्यतीत कर रहे होंगे ?"

अति अनुभवी प्रधान ने उत्तर दिया-"सारे पुरूष।"

राजा ने आश्चर्य चकित होकर कहा ,"आपकी बात सच्चाई से काफी दूर दिखती है।"

सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए एक प्रयोग किया गया। दो बड़े मकान तैयार करवाये गये। तदनतंर राजा ने डांडी पिटवायी कि जो अपनी पत्नी के अधीन हों वे सभी काले बंगले में जायें, शेष सभी श्वेत बंगले में जायें। दूसरे दिन राजा ने जाँच की तो दो पुरूष ऐसे निकले जो श्वेत बंगले में गये थे।

राजा ने प्रधान से कहा कि उनका निर्णय गलत सिद्ध हुआ है। दो पुरूष ऐसे निकले है जो अपनी पत्नी के अधीन नहीं हैं।

प्रधान ने राजा से कहा कि, "मेरे विधान को असत्य घोषित करने से पूर्व उन दो पुरूषों से पूछिये तो सही कि वे श्वेत बंगले मैं किस लिए गये हैं ?"

जब राजा ने इन दोनों बहादुरों से प्रश्न किया तब उन्होंने जवाब दिया कि "हमारी पत्नी ने चेतातेहुए कहा कि "खबरदार ! यदि काले बंगले मैं गये तो ! आपको लोग निर्बल और जोरू का गुलाम कहेंगे।"

प्रधान ने मूंछ में हंसते हुए राजा की ओर देखा। राजा तो बेचारा शर्मिंदा हो गया।

# 33. क्या धन से कभी तृप्ति हो सकती हैं?

एन्ड्रूज कार्नेगी अमरिका का सर्वाधिक अमीर आदमी था ।

संसार के धनकुबेरों में उसका द्वितीय क्रम था । पहले क्रम पर हैदराबाद का निजाम था ।

कार्नेगी ने आत्मकथा में जो लिखा है, वह यहाँ दिखाया जा रहा है ।

कार्नेगी अपने सेक्रेटरी से हमेशा उस बात की तात्कालिक तहकीकात करने के लिए कहता था कि निजाम के पास कितना धन है ! निजाम के पास इतना अफरात –और हर तरह का धन था जिसकी गणना किसी भी तरह नहीं हो सकती ।

यह बात सेक्रेटरी को मालूम थी पर यदि वह सत्य कार्नेगी को बताया जाये तो उस बात की ठेस लगने के कारण वह कुदरती मौत मर जाये या फिर ईर्ष्यावश होकर आत्महत्या कर बैठे ।

सेक्रेटरी हमेशा कार्नेगी के सवाल के जवाब में कहता था कि ,"साहब ! मैंने तलाश करवायी है । कुछ महीनों में जवाब मिल जायेगा ।"

इस प्रकार बात को टालते हुए कई बरस बीत गये ।

दस अरब की सम्पत्ति छोडकर एक दिन कार्नेगी ने हमेशा के लिए आँखें मूंद ली।

उसकी इच्छा थी कि "यदि निजाम की दौलत का स्पष्ट आंकडा हाथ लग जाये तो उससे भी ज्यादा कमाई करके उसके हाथ से प्रथम क्रमांक हथिया लूँ ।

पर कार्नेगी की इच्छा हमेशा के लिए अधूरी रह गई ।

# 34. विद्वान को भी वासना मार सकती है

(अध्यात्मसार नामक ग्रंथ में महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराजा ने फरमाया है कि कामवासना के आक्रमण से वही बच सकता है, जिसे गुरूकृपा प्राप्त हो। अन्यथा वासना भलभले शास्त्रज्ञ का भी पतन करा देती है। यह सत्य यहाँ प्रस्तुत जैनेतर कथा में मिलता है।)

व्यास नामक एक ऋषि ने एक दिन एक श्लोक की रचना की,जिसमें लिखा कि,

"मात्रा, स्वस्त्रा, दुहिता वा नो विविक्तासनोभवेत् ।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।"

सगी माँ, बहन या पुत्री के साथ भी एकांत में नहीं रहना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों के आतंक बड़े-बड़े विद्वान को भी जोर से पटक देने में समर्थ होते हैं।

व्यासजी के शिष्य जैमिनी ऋषि को यह श्लोक बहुत पसंद आ गया पर उन्होंने गुरुजी को सूचित किया कि उस श्लोक से "विद्वान" शब्द को हटा दिया जाये क्योंकि विद्वान का कभी पतन नहीं हो सकता।

गुरूजी ने शिष्य से कहा :"वत्स ! तुम अभी उस शब्द पर और विचार करो। चार-छह दिन बाद भी तुम्हारा यह आग्रह बना रहेगा तो मैं "विद्वान" शब्द को हटा दूंगा। अन्यथा मेरी समझ के अनुसार वह शब्द सर्वथा उचित है।" ऐसा कहकर व्यासजी ने जैमिनी ऋषि को उस शब्द की यथार्थता समझाने के लिए पाठ सिखाना तय कर लिया।

संयोगात् एकदा आकाश में मेघाडम्बर छा गया। दिन दहाडे घना अंधेरा छा गया। बिजली कौंधने लगी और मूसलाधार बारिश होने लगी। धारासार वर्षा होने लगी।

जैमिनी ऋषि अकाल वर्षा की उस कुदरती लीला को देखने के लिए झोंपडी का द्वार खोलकर खड़े रहे। उस वक्त उन्होंने कुछ दूरी पर एक यौवना को देखा। उसकी पूरी देह भीग चुकी थी। उसके कपड़े उसकी देह के साथ चिपक गये थे।

धीरे धीरे वह कुटिर की दिशा में आ रही थी। आखिरकार वह कुटिर के पास ही दबकर खड़ी हो गई। वैसे भी उसका स्वरूप बडा ही मोहक था। उसमें भीगे हुए वस्त्रों ने वृद्धि की। उसके प्रति

अकल्प्य आकर्षणवश जैमिनी ने उसे सहायक होने की भावना से कुटिर में आने के लिए कहा। वह फौरन कुटिर में आ गई।

जैमिनी के पास वल्कल वस्त्र थे, वे उस यौवना को दिये और तापने के लिए अलाव की व्यवस्था कर दी। शरीर से चिपके हुए वस्त्रों को निकालने में सहायक हुए।

युवती को वल्कल वस्त्र पहनना नहीं आया, अतः उसने जैमिनी को सहायता करने के लिए कहा।

वस्त्र परिधान कराते समय जैमिनी की आत्मा कामविकार से नखशिख जल उठी। शरीर में सिहरन पैदा हुई। उन्होंने उससे कहा :"तुम अपना घुंघट खोल दो." पर उस युवती ने ऐसा करने से इन्कार किया। जैमिनी ने स्वयं घूंघट उठाने का प्रयत्न किया। थोडे से प्रयास में उन्हें सफलता मिल गई।

पर यह क्या ? घुंघट उठाते ही उन्होंने मुख देखा –व्यास मुनि का !

व्यास मंद मंद मुस्कुरा रहे थे। उनकी दाढीवाली भव्य मुखाकृति दिखाई दे रही थी।

माया सिमट गई थी। व्यासजी ने कहा :"वत्स ! अब समझ में आया न कि उस श्लोक में विद्वान शब्द अत्यंत उचित है !

भाई ! भले भले महारथी जैसे त्यागी भी वासना की प्रचण्ड वेगवती बाढ में बह गये हैं। इतिहास या शास्त्रों के पृष्ठों पर ऐसे अनेक दृष्टांत चमके हैं। उन्हें पढकर ही मैंने उस श्लोक में "विद्वान" शब्द का प्रयोग किया है।

"बेटे ! संताप नहीं करना, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है।""

बेचारे जैमिनी ! ऐसे मूढ हो गये और शर्मिंदा हुए कि धरती यदि मार्ग दे तो तत्क्षण धरती में समा जाये।

जैमिनी ने गुरुजी के चरणों में झुककर अपनी भूल की क्षमायाचना की।

# 35. न्याय तो सर्वत्र समान होता है :- चंद्रशेखर आजाद

चंद्रशेखर आजाद !

गोरों की गुलामी से भारत को मुक्त कराने के लिए "अमरकोष" नामक संस्कृत शब्दों का मुखपाठ करते करते खड़े होकर "इन्किलाब जिंदाबाद" के सूत्र बोलने के साथ साथ क्रान्तिवीरों के दल में बारह वर्ष की अवस्था में जुड़ा हुआ भारत का महावीर सपूत !

उसकी टुकडी में एक बार किसी धनिक के घर लूट करने जा रहे उसके सहयोगी को उसने उस घर में सोयी हुई रूपांगना की तरफ कामभावना से प्रेरित होकर आगे बढते हुए देखा।

"आजादी का सिपाही ऐसा कामांध हो ही नही सकता।" आजाद ने मन ही मन कहा ,और दूसरे ही क्षण, उस सहयोगी को वहीं पर गोलियों से ढेर कर दिया !

बलात्कार के हमले के भय से थरथर कांप रही उस औरत के पास जाकर आजाद ने क्षमायाचना की और उसे भयमुक्त हो जाने के लिए कहा।

उस समय चंद्रशेखर का हृदय व्यथा से छलक गया । वह मन ही मन कह रहा था "ऐसे दुराचारियों से हम देश को कैसे आजादी दिला सकेंगे ?"

उस दिन उसने अपनी टुकडी को लूट चलाने से रोक दिया। सब अपने गुप्त स्थान पर जमा हुए।

अत्यंत आक्रोश में आकर आजाद ने सहयोगियों से कहा "क्या हम नीच कार्य करने के लिए लूट करने गये थे ?

यदि आप लोगों को सुंदर स्त्रियों की ही भूख है तो जाओ और भुगतो संसार ! आज ही आज इस दल से मुक्त हो जाओ।"

"आइंदा यदि कोई ऐसी भूल करेगा तो मैं इस दल को फूंक डालूंगा। ऐसे कलंकित दलों से देश को कभी आजादी प्राप्त हो नही सकती।"

उस समय सारे सहयोगियों के मस्तक शर्म से झुक गये।

# 36. कैसी है विषयवासना

उसका नाम जिनदास था। वह बहुत धनवान था। वह विवाहित था।

अमीरी में पले –बढे होने पर भी उसके अंदर उच्च प्रकार की धार्मिकता थी।

किसी कारणवश उसकी पत्नी गलत राह पर चली गई थी।

एक बार रात्रिवेला में उसने अपने व्यभिचारी पुरूष को अपने घर बुलाया। तहखाने के जिस अव्यवहृत से खण्ड में वे दोनों गये, उस कमरे में जिनदास पहले से ही ध्यानस्थ मुद्रा में खड़े थे। वे परमात्मा में लीन हो गये थे ओर उनकी पत्नी गई थी प्रियतम में लीन होने के लिए।

उसने उस अंधियारे कमरे में चारपाई डाली। चारपाई के एक (पाये) पैर के निचले हिस्से में कील उल्टी लगी थी।

वही पैर जिनदास के पाँव पर लगा और कील उसके पैर में सीधी उतर गई। पैर से बहुत खून बहने लगा। ध्यानस्थ जिनदास ने उस समय मुँह से उफ तक नहीं किया।

पर उसके बाद जिस चारपाई में दोनों प्रेमपंछियों की जो पापलीला चली, वह सब अपनी सगी आँखों के सामने होती देखकर जिनदास के मन में विचार आया कि यह संसार कितना पापमय ,रागमय और स्वार्थी है !

संसार इतना असार होते हुए भी मैं कितना नीच हूँ कि मैं उसमें चिपका बैठा हूँ ! धिक्कार है ,मुझे अपने आप पर ! ऐसा विचार करते ही पत्नी के कूकर्मजनित आघातवश उनकी मौत हो गई। वह देवलोक में देव हुआ।

दूसरे ही क्षण वह तहखाने में पहुँचा। पहुँचते ही कमरा प्रकाश से भर गया।

अब उन्हीं प्रेमीपंछियों को प्रकाश में मृतः पति का शव देखने को मिला। वे दंग रह गये।

देवात्मा ने सारी बात कही। उनको बोध देकर अधर्म से वापस लौटाकर धर्ममार्ग पर चढा दिया।

## 37. भाभी के संस्कारों की परम्परा

देवर के प्रति अति कामुक ऐसी भाभी को जब पता चला कि देवर तो अब दीक्षा अंगीकार कर रहा है, तब वह अत्यंत बेचैन हो गई। अब अपने मनोरथ कभी पूरे नही होंगे क्योंकि देवर ने दीक्षा ग्रहण कर ली है। भाभी उसी मनोदशा में कामाग्नि से जलकर मर गई और कुतिया के रूप में जन्मी।

पूर्व के संस्कारों के जोर वश वह विहार कर रहे देवर-मुनि से चिपक गई। कैसे भी वह छोड़ने का नाम नही ले रही थी। सहवर्ती मुनियों ने मुश्किल से उनको छुड़ाया।

कुतिया उसी पीड़ा में मरी। अब वह बंदरिया के रूप में जन्मी। जो व्यक्ति संस्कारों को जीवित रखकर मरता है वह अपने नये जन्मों मे ज्यादा ऊधम मचाता है।

उस बंदरिया ने एक बार उस देवर-मुनि को वन से गुजरते हुए देखा। उसका काम संस्कार जागृत हो गया। वह कूदकर मुनि से चिपक गई। बडी मुश्किल से मुनियों ने उसे छुड़ाया। पर, तत्पश्चात् वह आत्मा के विरह की पीड़ा में ही मरी और भूतनी (व्यंतरी) हुई। उसने उस देवर-मुनि को देखा और अत्यंत क्रोधित होकर उनके दोनों पैर तोड़ दिये।

सद्भाग्यवश उस समय कोई देवात्मा वहाँ से गुजर रहे थे। उन्होंने उस भूतनी को भगाया और मुनि का अंग अक्षत कर दिया। कैसी होती है ! जिन्दा रह जाते कुसंस्कारों की ताकत।

## 38. स्वार्थांध नारी मृणाल

मालवपति मुंज की यह बात है। तेलंग देश के राजवी तैलप पर जब मालवपति ने आक्रमण करने का संकल्प किया तब उस संकल्प को जानकर वृद्ध मंत्री रुद्रादित्य ने राजा से कहा, "राजन् ! यह साहस करने योग्य नहीं है। आपका समय तो प्रतिकूल है ही परंतु तैलप के दाँवपेच अत्यंत हीन कोटि के होते हैं। शायद आप उनमें फँस जायेंगे।"

परंतु बहादुर मालवपति ने मंत्री की इस सलाह की उपेक्षा करते हुए कहा , "मंत्रीश्वर ! तैलप तो मेरे लिये मच्छर समान है, उसे मसलने में मुझे तनिक भी देर नहीं लगेगी । आप ऐसी कमजोर और वाहियात बातें मत करो ।"

और...मालवपति ने एक दिन विराट सैन्य के साथ तैलंग देश की दिशा में प्रस्थान किया ।

हकीकत में, शौर्यपूर्वक सामने चलकर लड़ने में पराजय देखकर तैलप ने कपट करके मुंज को जिन्दा पकड़ लिया । लोहसलाखों की अभेद्य दीवारों के भीतर मुंज को ढकेल दिया । मुंज के खानपान आदि की जिम्मेदारी तैलप ने अपनी बहन मृणाल को सौंपी ।

भोजन के प्रत्येक समय का मृणाल बराबर खयाल रखकर मुंजाल को विविध व्यंजन खिलाती थी । मुंज जितना सुरूप था, मृणाल उतनी ही कुरूप थी । मुंज वासना पीडित था । उसे एकान्त का सहारा मिला । मृणाल को रूपवान पुरूष की सोहबत मिली । दोनों को एक-दूसरे का प्रिय मिलते ही दोनों परस्पर प्रेमपाश में बंध गये । वह प्रेम अंततोगत्वा प्रगाढ हुआ । अब मुंज के लिए वह कारागार नही था, वह मालवा का महल हो गया था । मृणाल का बेशुमार प्रेम पाकर वह प्रेम में पागल हो गया था ।

पर मुंज का यह कारावास मालव की प्रजा को, मालवदेश के मंत्रीगण को कैसे मंजूर हो सकता था ? उन्होंने तो मालवपति को कारागार से भगा देने के लिए सुरंग बनाना शुरू किया । सुरंग का काम पूरा होते ही मंत्रीगण ने मालवपति को वहाँ से मुक्त करा लेने का निर्णय करके मालवपति को सूचित किया ।

मृणाल बडी चतुर स्त्री थी । उसने सोचा कि मालवा जाने और आधिकारिक रूप से मालवपति की रानी होने में कोई दिक्कत नहीं है परंतु मालवपति की नजर में अन्य रूपवती यौवना आयेगी तो वह तुरंत मेरे जैसी श्यामरूपा की नितांत उपेक्षा कर देंगे । इस कारागार में उनके लिए मेरे सिवा अन्य कोई नही है । अतः हम दोनों यहाँ ही रहें यही उचित है । मुझे ऐसा कुछ सुनिश्चित कर देना चाहिए । ऐसा सोचकर उसने भाई तैलप से मिलकर मुंज के भाग जाने की सारी योजना का पर्दाफाश कर दिया । यह बात सुनते ही तैलप आगबबुला हो गया । उसने मुंज पर सख्त चौकी करके पहरा बढा दिया। सुरंग को निष्फल कर दिया । मुंज के सहयोगियों को नींद में ही धर लिया । इतना ही नहीं पर दूसरे दिन से मुंज

को हथकडी पहनाकर तैलंग के अलग अलग क्षेत्रों में भोजन की भीख मांगने के लिए घुमाना शुरू किया।

मृणाल के स्वार्थपूर्ण दाँव को जानकर मुंज को गहरी ठेस पहुँची। उसने जगह-जगह सर्वत्र नारी के स्वार्थ और कपट प्रेरित दाँवपेचों की बात गीतों के माध्यम से व्यक्त की। आखिर एक दिन उस मालवपति को सार्वजनिक रूप से हाथी के पैर तले कुचल दिया गया। मृणाल ने मुंज को खोया। मालव प्रजा ने मालवपति को खोया। यही है गाथा स्वार्थ की भयानकता की : स्वार्थांध आत्माओं की।

## 39. मात्र विचार के पापवश निरंतर बरबाद हो रहा रूपसेन

सुनंदा राजा की प्रिय राजकुमारी थी। बारह वर्ष की अवस्था में उसने झरोखे से सामने वाले घर में एक दृश्य देखा। पति अपनी पत्नी को चुटिया से पकड़कर जोर जोर से मुक्के मार रहा था। उसका माथा बार-बार दीवार से पटकता था। वह स्त्री जोर जोर से चीख रही थी-" बचाओ..बचाओ", पर सारे प्रयत्न निष्फल रहे। उसकी सास ही उसे पीटवा रही थी।

यह देखकर सुनंदा को पुरूषजाति से नफरत करने लगी। वह पुरूषद्वेषी हुई। उसने पिताजी को विवाह रचाने से हमेशा के लिए ना कह दिया। उसकी आयु भी तेज गति से बढने लगी।

यौवन तो कामराज की क्रीडास्थली ! पूर्ण यौवन को प्राप्त सुनंदा ने अपने ही परिवार के परस्पर कामुकतापूर्ण मस्ती कर रहे युगल को देखा। उसे काम-जीवन में प्रविष्ठ नहीं होने के कारण पश्चाताप हुआ। अब उसका प्रत्येक क्षण कामुकता से भरपूर व्यतीत होने लगा।

एक दिन झरोखे से रास्ते पर दृष्टिपात करते हुए सुनंदा ने एक अतिरूपवान श्रेष्ठीपुत्र रूपसेन को जाते हुए देखा। दासी द्वारा उसके घर का अता-पता तलाश करवाकर उसे कौमुदी महोत्सव की संध्या के अनंतर राजमहल में आने के लिए आमंत्रित किया। श्रेष्ठीपुत्र ने उस आमंत्रण का स्वीकार कर लिया।

कौमुदी महोत्सव मनाने के लिए समग्र प्रजाजनों को नगर के बाहरवाले विशाल उद्यान में अनिवार्य रूप से उपस्थित रहना होने पर भी सुनंदा सरदर्द के बहाने महल में ही रही। यथासमय रूपसेन महल के नीचे पहुँचा। वहाँ लटकता हुआ एक रस्सा तैयार था पर उस रस्से द्वारा नगर का अठंग जुआरी महाबल जुए के लिए पैसों की जरूरत पडने पर राजमहल में चोरी करने हेतु उपर चढ रहा था। अतः रूपसेन नीचे रह गया था।

उसी क्षण उद्यान से पटरानी की दासियाँ रानीमाँ के लिए जरूरी सामान लेने के लिए सुनंदा के महल में गईं। अतः सुनंदा ने सारे दीप बुझा दिये। अंधेरा फैल जाने के कारण वह महाबल जुआरी को ही रूपसेन समझ बैठी। दोनोंने सांसारिक भोग भोगा। उस समय नगर में जाते हुए रूपसेन के माथे पर किसी जर्जरित मकान की दीवार ढह जाने के कारण वह तत्क्षण मरण की शरण में चला गया। सुनंदा के गर्भ के रूप में उसका जीव सुनंदा की कुक्षी में आ गया।

कुमारिका सुनंदा की दासियों ने सुनंदा के परिवर्तित होते जा रहे शारीरिक लक्षणों से गर्भ का खयाल आ जाने से गर्भपात करवा दिया। बेचारे रूपसेन का प्राणांत हो गया ! कुछ समय बाद किसी रजवाड़े के राजकुमार के साथ सुनंदा का विवाह हुआ। इस तरफ तीसरे भव में रूपसेन साँप के रूप में अवतरित हुआ।

कालान्तर में उद्यान में पति के साथ सैर कर रही सुनंदा को देखकर मोह जागृत होने से वह साँप उसका स्पर्श पाने के लिए पीछे पड़ गया। सुनंदा घबरा गई। उसके पति ने साँप पर बडा पत्थर दे मारा और उसकी मौत हो गई।

चौथे भव में रूपसेन का जीव कौए के रूप में अवतरित हुआ। सुनंदा के महल की खिड़की के सामने वाले पेड़ पर बार-बार बैठने के कारण एक दिन उसने सुनंदा को देखा। पूर्वभव का मोह-संस्कार एकदम जागृत हो गया। वह (कौआ) अपनी भाषा में जोर जोर से "का...का..." करते हुए अनजाने ही सुनंदा के प्रति प्रेम दिखाने लगा पर उसकी अविरत कर्कश आवाज सुनंदा के लिए असह्य हो गई। वह कौआ एकाएक सुनंदा की गोद में जा बैठा और उसके अंगों का स्पर्श करने लगा। अतः उकताकर उस राजा ने उसकी गरदन को मरोड़ दिया। वह कौआ कुछ देर तड़फकर मर गया।

पांचवें भव में रूपसेन के जीव का उसी उद्यान में हंस के रूप में जन्म हुआ। उसे सुनंदा को देखते रहने में बडा आनंद आता था पर एक बार एक कौआ राजा के शिर पर विष्टा छोड़कर उड़ने लगा तब राजा ने उसे मारने के लिए गोली चलायी पर वह गोली हंस को लग गई और वह मर गया !

छठे भव में वह हंस हिरन हुआ। रानी को उसका मांस खाने की इच्छा हुई। सो उसे पकड़ लिया गया और उसे तत्काल मार डाला। उसका मांस बहुत स्वादिष्ट लगने के कारण राजा और रानी दोनों मांसाहार करते समय उस मांस की बहुत प्रशंसा करने लगे। उस वक्त दो मुनि वहाँ से गुजरे। उनमें से ज्ञानी मुनि ने अपने सहवर्ती मुनि से कहा कि, "मात्र कामुक मन बन जाने से रूपसेन का जीव कितने सारे भयंकर भव करता जा रहा है !

सुनंदा उसका (रूपसेन का) ही हिरन के रूप में मांस खा रही है ! हाय! कैसा यह असार संसार है! मन के पाप भी कितने कातिल हो सकते हैं !"

इस वार्तालाप के कुछ त्रुटक त्रुटक शब्द सुनंदा के कान में पडने पर जिज्ञासावश उसने मुनि से सारी बात विस्तारपूर्वक कहने के लिए विनति की। मुनि ने विस्तार पूर्वक सारी बात कहकर बताया कि उस हिरन का जीव अब हाथी बनेगा और बहन तुम्हारे ही उपदेश से विराग पाकर भवचक्र का अंत करने की दिशा में वह गति करेगा।"

स्वयं से जुड़ी एक जीव के सात भवों की करुण घटना सुनकर सुनंदा ने संसार के प्रति विराग अनुभव किया। उस ज्ञानबल से उसने हाथी के स्थल का पता लगाया। गुर्वाज्ञा पाकर वह साध्वीजी ने हाथी को प्रतिबोधित करने के लिए वनगमन के लिए प्रस्थान किया तब वहाँ के लोगों ने उन्हें ऐसा कहकर रोका कि ,"हाथी पागल होकर इसी दिशा में बढ रहा है। अतः आप यहाँ से इधर-उधर हो जाइए" परंतु साध्वीजी वहीं खड़ी रह गईं।

उनकी आशीष दे रही मुद्रा को देखकर हाथी शांत हो गया। उसे बोध देने से हाथी को जातिस्मरण हुआ। उसे राजा की हस्तिशाला में रखा गया। छठ के पारणे छठ करते हुए उसने देवलोक गमन कर लिया।

पश्चाताप से पाप निर्मूल हुआ। सद्गति साध्य हुई। निकट आकर खडी हुई।

# 40. निमित्तों में फंसते जीव

पद्मनाभ अयोध्या का राजा था। उसकी पत्नी का नाम राजरानी धारिणी था। उसके दो पुत्र थे- मधु और कैटभ। मधु को राजा बनाकर कैटभ को युवराज पद पर आरूढ कर राजा और रानी ने दीक्षा अंगीकार की।

राजा साधु के राज्य में सैंकडो गाँव थे तथा अनेक नगर भी थे। भीम नामक कोई भूमिलुब्ध राजा बारंबार राजा मधु के आधिपत्यवाले गाँवों पर गुरीला प्रकार के हमले करता था और प्रजा को लूटता था। ऐसे कहर से त्रस्त प्रजा के महाजनों ने मधुराज को "कुछ" करने के लिए विनती की। मधुराज ने व्यूहरचना की.उसने विराट सैन्य के साथ प्रस्थान किया।

रास्ते में वटपुर नामक नगर आया। उसके राजा हेमरथ ने मधुराज की एक दिन के लिए अपूर्व आतिथ्य सेवा की। राजा को अपूर्व स्वादिष्ट, गरिष्ट भोजन कराया। भोजन परोसते समय राजा हेमरथ की रानी इन्द्रप्रभा का अप्सरा जैसा सौंदर्य देख मधुराज इन्द्रप्रभा के प्रति कामुक हुआ। मधुराज की नजरों में उभरी हुई कामुकता रानी की नजर में आ गई। अति तेज गति से वह भोजन समारोह वाले खण्ड से अंत:पुर चली गई। इससे मधुराज बेचैन हो गया। भोजन के बाद राजमहल के विशाल सभागार में मधुराज के सम्मान का कार्यक्रम आयोजित हुआ। राजा हेमरथ ने रानी इन्द्रप्रभा से कहा कि "तुम मोतियों से मधुराज का स्वागत करना।"

रानी ने कहा,"स्वामीनाथ ! ऐसी बात मत कीजिए। मुझे आपके मेहमान की आँखों में तीव्र कामुकता दिखाई दे रही है। आप मेरे शील को कहीं खतरे में डाल देंगे ! पुरूष की वासना नारी की वासना की अपेक्षा एकदम जल्दी जागृत हो जाती है।

कमनसीबी से राजा हेमरथ ने इन्द्रप्रभा की बात नही मानी। उपर से उसने रानी से कहा कि, "यह मधुराज तो अत्यंत सदाचारी राजा है। तुम उसके बारे में अनर्गल कल्पनाएँ मत करो।"

इन्द्रप्रभा ने कहा, वह निश्चित ही अच्छे राजा होंगे पर मुझे उनकी आँखों में कामविकार स्पष्ट रूप से नजर आया है, फिर भी जैसी आपकी मरजी।"

इन्द्रप्रभा ने सोलह शृंगार सजाये। अनोखा रूप धारण किया। राजा मधुरथ का बहुत प्यार से स्वागत किया और ...राजा इन्द्रप्रभा को देखता ही रहा। अब उसकी आँखें ही नहीं, उसका रोम-रोम कामाग्नि से जलने लगा। वह अत्यंत अस्वस्थता अनुभव करने लगा। उसने मंत्री से खुलकर बात की। आश्चर्यचकित हुए मंत्री ने -यह समझाया कि भीमराज को जीतना हमारा सर्वोपरी कर्तव्य है। साथ ही कर्तव्यभ्रष्ट नहीं होने के लिए भी समझाया। राजा ने उस बात का स्वीकार किया। राजा ने पूरी ताकत के साथ भीमराज पर हमला कर दिया। देखते ही देखते उसे जीत लिया। वापसी में मधु राजा हेमरथ का अतिथि बनने के लिए तत्पर हुआ। मंत्री को राजा की मैली मुराद की गंध आ गई। राजा को परदारा सेवन के भयानक पाप से बचा लेने के लिए मंत्री ने सेनापति के साथ विस्तृत परामर्श किया। उन्होंने निर्णय लिया कि सुबह के भोजन में मधुराज को नशीला पदार्थ मिलाकर गहरी नींद सुला दिया जाये। ऐसी दशा में रथ सहित राजा हेमरथ के वटपुर नगर के सिवान में बिना रुके अत्यंत वेगपूर्वक अयोध्या पहुँचा दिया जाये।

वैसा ही हुआ। नशे से मुक्त हुए राजा को जब पता चला कि वह अयोध्या पहुँच गया है तो वह मंत्री पर क्रोध करने लगा। मंत्री ने सारा दोष सेनापति को दिया। राजा ने सेनापति से जवाब तलब किया। उन्होंने बात को किसी तरह खत्म कर दिया।

अब कामाग्नि में जल रहे राजा की देह सूखने लगी। मंत्री बडी दुविधा में पड़ गया। राजा को जान से बचा लेने के सिवाय कोई चारा रहा नहीं था। अतः निकट भविष्य में आ रहे वसंतोत्सव निमित्त मधुराज की ओर से सभी मित्र-राजाओं को आमंत्रण भेजा गया।

राजा हेमरथ ने अयोध्या जाने का निर्णय करके रानी इन्द्रप्रभा को साथ चलने के लिए कहा। इन्द्रप्रभा ने कहा ,"हे आर्यपुत्र ! आप मुझे अपने साथ मत ले जाइए। मुझे उस मधुराज की आँखों में "मधु" नहीं "विष" नजर आता है। वह मेरे शील को भ्रष्ट करके ही रहेगा। आप उस समय कुछ नहीं कर पायेंगे।"

हँसते हुए हेमरथ ने इन्द्रप्रभा की बातों को हवाई कल्पना बताते हुए कहा ,"तुम ऐसे अच्छे राजा के बारे में गलत मत सोचो, कुछ भी अमंगल नहीं होने वाला। तुम्हारे जैसी अनेक सौंदर्यवान अंगनाएँ

तो मधुराज के यहाँ दासी के रूप में काम करती हैं। वह कदापि तुम्हारे रूप में पागल नहीं हो सकता। अतः अब तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा।" इन्द्रप्रभा को अंततः पति के आग्रह के वश होना पड़ा।

भव्यातिभव्य अतिथि सत्कार के साथ वसंतोत्सव संपन्न हुआ। सभी राजाओं ने विदाई ली। राजा हेमरथ भी जब विदाई की तैयारी करने लगा तब मधुराज ने हेमरथ से कहा, "मैंने इन्द्रप्रभा के लिए उत्तम अलंकार बनाने के लिए दिये हैं। उन्हें तैयार होने में दो ही दिन लगेंगे। अतः यदि आप उसे यहाँ छोड़कर जायें तो बेहतर होगा।"

भोले हेमरथ ने इन्द्रप्रभा को रुक जाने के लिए कहा। इन्द्रप्रभा को ऐसा लगा कि अब उसके सौ वर्ष खतम हो जायेंगे। पति को लाख चेताने-समझाने पर भी वह समझने के लिए तैयार ही नहीं तो फिर मैं बार-बार एक ही बात क्यों करूँ ? भले, जो विधाता को मंजूर हो वैसा होने दो।"

इन्द्रप्रभा वहाँ ठहर गई। दूसरे दिन मधुराज ने इन्द्रप्रभा के पास दूती भेजकर बताया कि "तुम फौरन मेरे पास आओ, तुम्हारे पति का महत्वपूर्ण संदेश लेकर दूत मेरे पास आया है।"

इसके पीछे के आशय को समझ चुकी इन्द्रप्रभा विवश होकर दूती के साथ मधुराज के पास गई। मधुराज ने बलात्कार करके इन्द्रप्रभा को पतित किया। इन्द्रप्रभा ने भी अपना मन मनाकर मधुराज की पत्नी के रूप में जीवन व्यतीत करना स्वीकार कर लिया। पति की मूर्खता की वेदी पर इन्द्रप्रभा को बलि चढाया गया।

अब हेमराज के बुलाने पर भी न तो मधुराज इन्द्रप्रभा को भेज रहा था और न इन्द्रप्रभा अपने पुराने पति के पास जाने के लिए तैयार ही होती है।

इस स्थिति में हेमरथ ने मधुराज के साथ युद्ध करने के बारे में मंत्री से बात की, मंत्री ने कहा कि "बलिष्ठ के साथ टकराने से आपको कोई लाभ होने वाला नहीं है। यह तो खुद की लगाई आग है। अतिरेकी भोलेपन का यह परिणाम है।"

राजा हेमरथ अकाट्य विवशतावश पागल हो गया। दिन रात , "इन्द्रप्रभा ! ओ प्रिय इन्द्रप्रभा!" ऐसा बकवाद करने लगा। यह पगलाया हुआ राजा अपने ही नगर की गलियों में भटकने लगा। राजा की ऐसी अवदशा को देखकर प्रजा भी दुःखार्त हो गई।

मंत्री ने राज्य की धुरा को सम्हाला। पागल राजा अयोध्या पहुँच गया। राजा हेमरथ अयोध्या की जिस नारी को देखे उससे एक ही सवाल करता था ,"क्या तुम ही इन्द्रप्रभा हो ! जल्दी से कहो,क्या तुम ही मेरी प्रिय इन्द्रप्रभा हो !"

दासी ने यह बात रानी इन्द्रप्रभा को बताई। उसने स्वयं ऐसी करुण हालत में अपने पति को देखा। वह चीखकर बेहोश हो गई ! उसे स्वयं के प्रति धिक्कारभाव हुआ। उसका मन अविरत रूप से कचोटने लगा कि "ओ नीच ! तुम मधुराज की रानी बनने से पहले जीभ कुचलकर मर क्यों नहीं गई ! तुम ही कामुक हो, तुम ही गिरी हुई हो।"

ऐसी हालत में वह बैठी थी कि वहाँ मधुराज आये। कहा,कि "प्रिय ! किन गहरे विचारों में खो गई हो ? क्यों उद्विग्न नजर आ रही हो ?" उसी वक्त एक चौकीदार हाथ-पैर में बेड़ियाँ पहनाकर एक अपराधी को पकड़ लाया। राजा से कहने लगा,"इस आदमी ने परस्त्रीगमन किया है, वह रंगे हाथों पकड़ा गया है। उसे क्या सजा दी जाये?"

यह सुनकर क्रोधित हुए राजा ने कहा,"फांसी ... आज ही फांसी ...अभी तत्काल फांसी। शास्त्रनिषिद्ध भयंकर पापों में यह एक पापः परस्त्रीगमन...इसमें और अधिक क्या सोचना है ? सजा में विलंब भी किस लिए ?"

गंभीर मुखमुद्रा किये हुए इन्द्रप्रभा ने तुरंत राजा से सवाल किया कि "तो आपको भी फांसी क्यों न हो ? क्या मैं आपकी पत्नी हूँ या परदारा हूँ ?"

राजा चौक उठा। वह तत्क्षण बेचैन हो गया। उसे अपनी भयानक भूल को लेकर तीव्र पछतावा होने लगा। उन दिनों उस नगर में किसी ज्ञानी मुनि का आगमन हुआ। मधुराज, रानी इन्द्रप्रभा और युवराज कैटभ आदि सब लोग उनकी देशना सुनने के लिए गये।

वैराग्य सभर देशना का श्रवण कर उन तीनों को सुखमय संसार से नफरत हो गई। सब ने दीक्षा अंगीकार की और उत्तम कोटि के चारित्र का पालन करके सद्गति को प्राप्त हुए।

वह पागल राजा हेमरथ उसी अवस्था में जीवन भर भटकता रहा और कुत्ते की मौत मरकर दुर्गति को प्राप्त हुआ।

# 41. अब्रह्म का स्मरण भी कितना भयंकर!

मगध के नाथ महाराजा श्रेणिक भावी तीर्थंकर के सपूत और तत्कालीन तीर्थंकर परमात्मा महावीरदेव का वह प्रिय शिष्य : नाम उसका नंदिषेण - उनका यह दृष्टांत।

पांच सौ रूपरमणियों के साथ पिता ने उसका विवाह करवाया था पर एक दिन विराग जागृत हुआ। आकाशवाणी हुई कि "नंदिषेण दीक्षा मत लो, अभी संसार भोगने का तुम्हारा कर्म उदित होने वाला है।"

पर विराग की परकाष्टा पर पहुँचा नंदिषेण यह बात मानने के लिए राजी ही नही था। उसने उस बात को गलत सिद्ध करने के लिए घोर मार्ग का चयन कर लिया। यह मुनि जानते थे कि वासना का जागरण दूध रहित छह विगई के सेवन से होता है। अतः उसके त्यागी को वासना का जगना सम्भव ही नही है।

पर नंदिषेण का गणित फेल हो गया। उसमें निमित्त हुआ पांच सौ कन्याओं के साथ सेवित किये गये भोगसुखों का स्मरण।

स्मृति उसे भूतनी की तरह लगी हुई थी। दिन-रात संयमजीवन की उजली चादर को कोई दाग लग जाये उससे पूर्व वह जीवन का अंत करने के लिए एक बार पहाड़ी पर से घाटी में कूद भी पड़ा था। पर अफसोस ! किसी देवात्मा की उस तरफ नजर गई। उसे बचा लिया गया...और...अब ऐसा नहीं करने की सीख दी गई।

पुनः वह गमख्वार घटना घटित हो गई। भूल से कामलता गणिका के घर वहोरने के लिए चले गये। ना...उसे देखकर उनमें कामवासना भी नही जगी। पर उसके शब्दों से पर उनका अहम् जख्मी हुआ था।

जहाँ कंदर्प पीछे हट गया, दर्प वहाँ आगे दौड़ा चला आया। भीतर में भुक्त भोगों का स्मरण और बाहर से अहंकार की उछाल। पतन हो गया...। इसीलिए ऐसा कहा जा सकता है कि दूध इत्यादि के सेवन से अधिक तो भोगों का स्मरण ब्रह्मचर्य के नाश के लिए अधिक कातिल हो सकता है।

# 42. जिसने भी पलटकर देखा वह मरा

घर में खाने-पीने से कभी कम न होने वाली सम्पत्ति होने से, प्रिय दो पुत्रों की समुद्रपार व्यवसाय यात्रा करने की भावना का माता-पिता ने अस्वीकार कर दिया पर बेटे नहीं माने। माता-पिता की अवमानना करके उन्होंने समुद्रयात्रा का आरंभ किया। उनके नाम थे –जिनपालित और जिनरक्षित।

किसी अगम्य कारण से नही पर माता-पिता की आशीष प्राप्त नही की थी। अतः समुद्र में तूफान आया। जहाज टूटा। एक लकड़ी का सहारा लेकर दोनों किसी अनजान किनारे पर पहुँचे। उस प्रदेश की अधिष्ठात्री देवी स्वर्ग की कोई देवी थी। वह अति कामासक्त थी। वह अनेक प्रकार से उत्तम पुरूषों को फँसाती थी और उनको निचोड़ देती थी। वह नये-नये शिकार खोजती रहती थी।

इन दोनों भाइयों की भी यही दशा हुई। वे इस औरत की तीव्र कामुकता से त्रस्त हो गये थे। एक दिन उस देवी को अपने स्वामी की आज्ञानुसार कहीं बाहर जाना हुआ। मौका पाकर ये दोनों भाई किसी यक्ष के कंधे पर सवार होकर भाग खड़े हुए।

पुरजोर गति से यह यक्ष उन दोनों को सरहद पार करा देने के लिए भागता रहा। कहीं वह पीछे-पीछे दौड़ती हुई न आ जाये ऐसी आशंका के कारण यक्ष ने उनको पीछे पलटकर देखने से मना कर दिया।

अपने स्वामी का काम निपटाकर लौटी देवी ने शिकार के सरक जाने की खबर पाकर उनका पीछा किया। अति करुण स्वरों में उसने उन दोनों को एक बार "प्रेयसी" की ओर रुख करने के लिए कहा। एक भाई उसके शब्दों के मोहजाल में फंसा।

जैसे ही उसने मुड़कर देखा कि उस देवी ने उसके पेट में त्रिशूल भोंक दिया। वहीं पर उसका मांस खा गई और खून भी पी गई और अट्टहास्य करती हुई वहाँ से वापस लौट गई।

मुनि होकर जो संसार की ओर देखता है, कर्मराजा उसके ऐसे ही हालहवाल करता है।

## 43. ''तब जमाना शरीफ था।''

अस्सी वर्ष के किसी मुस्लिम बिरादर से बीस वर्षीय युवक ने प्रश्न पूछा कि,"काका ! आपकी युवावस्था का जमाना और आज के जमाने में आपको क्या फर्क नजर आता है ?"

बिरादर ने कहा,"बेटे ! शान्ति से सुन। मैं एकदम संक्षेप में तुम्हें समझाता हूँ।"

जब मैं अठाइस वर्ष का जवान था तब रेलवे के फाटक का जोड़वाला (फ्रेन्ट्रिस्-म्डन्) था। एक बार चौमासे के समय में धारासार बारिश हो रही थी तब रात्रि के ग्यारह बजे एक रूपवती षोडशी कन्या सराबोर भीगकर मेरी शरण में आयी। उसने मुझे कहा-"आश्रय दीजिए।" मैंने उसे अपनी सहोदरा बहन के रूप में रात्रि निवास करवाया। सुबह होते ही मैं उसे उसके घर पहुँचा आया। इस प्रसंग को मैं आज याद करता हूँ तब मुझे भारी पछतावे के साथ यह विचार आता है कि उस समय मैंने क्यों उस कन्या का अनुचित लाभ न उठाया ? यह विचार अब मुझे रात-दिन सताये हुए है।

बेटा ! वह समय भी बहुत खराब था। आज भी मैं खराब हूँ परंतु फर्क यह पडा है कि उस वक्त का जमाना शरीफ था। यह जमाना शरीफ रहा नहीं है।

चाचा की बात सुनकर वह युवा तो दंग रह गया।

## 44. गुण्डा भी दिलदार होता हैं।

कॉलेज की विद्यार्थिनी नीता के मोहक रूप और उद्‌भट वेशभूषा के कारण सारे कॉलेजियनों की नजर उसके प्रति कामुक बनी रहती थी। उसके साथ छेड़छाड़ भी बहुत होती थी। नीता तो त्रस्त हो गई थी। उसमें, एक दिन चार कॉलेजियन गुण्डे उसे एक जगह से पकड़ कर एक कमरे में ले गये। बहुत हाथापायी हुई। सद्‌भाग्य से नीता बच गई।

उन गुण्डे विद्यार्थियों का नेता महागुण्डा था। उसका नाम पंजवाणी था।

अंततः नीता एक रात पंजवाणी के घर गई। पंजवाणी हर तरह से पूरा था, शूरा था। नीता को घर पर अकेली आयी हुई देखकर, उसकी हिम्मत देखकर दंग रह गया।

नीता ने कहा, "आप मुझे गुण्डों से बचाइए। मैं आपकी शरण में आयी हूँ . आप अपनी बहन के साथ जो करना चाहो करो।" इतना कहकर उसने पंजवाणी का हाथ पकडकर उसके हाथ पर रक्षाबंधन के रूप में रूमाल बांध दिया। क्षण मात्र में यह घट गया।

पंजवाणी ने कह ,"मेरी बहन ! तुमने बहुत बड़ा साहस किया है। मेरे घर में मध्य रात्रि वेला में मेरे घर में पाँव धर कर...अब इस तरह कभी आना नही। आज से तुम्हें मेरा अभय वचन है। कोई नहीं परेशान करेगा। नीता का काम हो गया।

## 45. सचमुच ब्रह्मचर्य दुष्कर दुष्कर हैं

नगर के बाहर आश्रम था। गुरु-शिष्य रहते थे। गुरु के पास रोज नगरजन शाम को प्रवचन श्रवण के लिए आते थे। प्रवचन सुनकर वे बहुत प्रभावित होते थे।

सचमुच यह जोड़ी बहुत सदाचारी थी।

एक बार गुरु ने प्रवचन में कहा कि "ब्रह्मचर्य मात्र दुष्कर ही नहीं परंतु दुष्करातिदुष्कर है।"

दूसरे दिन शिष्य ने विरोध करते हुए कहा कि "ब्रह्मचर्य का पालन दुष्कर तो है ही पर दुष्करातिदुष्कर तो जरा भी नही।" गुरु ने कहा मेरी बात तुम्हें समय पर समझ में आयेगी।

कालान्तर में गुरु देवलोक को प्राप्त हुए।

एक मध्यरात्रि वेला में एक जवान सौंदर्यमयी युवती यकायक आश्रम में आयी। वह जंगल से गुजरते हुए घर जाने का रास्ता भूल गई थी। उसने आश्रम में आश्रय लिया। शिष्य ने उसे रात्रि बीताने के लिए अलग कमरा दिया।

पर यह क्या ? शिष्य के मन में भयानक वासना जगी। एकाध घण्टे बाद वह युवती के कमरे तक गया। उसने दरवाजा नहीं खोला तो उसने दीवार में छेद किया। उसमें से कमरे में जाने के प्रयास में बडी तोंद के कारण वह बीचोबीच फंस गया। उसका शरीर आधा बाहर और आधा भीतर। वह औरत तो भाग गई। सुबह में लोगों ने यह दशा देखी। शिष्य को सुरक्षित बाहर निकाला और पूछा कि क्या हुआ?

जवाब मिला: "और कुछ नहीं कहना है। इतना ही कहता हूँ कि सचमुच ब्रह्मचर्य का पालन दुष्करातिदुष्कर है।"

## 46. नौकरों के पिता तुल्य सेठ

उस सेठ का वतन पाटण था। मुम्बई में उनका कारोबार था। एकदा उन्होंने एक आदमी को अपने यहाँ नौकरी पर रखा। वह बहुत दिल से सेठ के यहाँ काम करता था। लगभग पच्चीस वर्ष बीत गये। सेठ को भी उसके प्रति बहुत लगाव था। एक बार सेठ ने पूछा :"तुम पाटण से हो पर पच्चीस बरसों में पाटण क्यों नही गये ?"

उस नौकर ने बताया:"बरसों पहले हुआ कर्ज चुकाने की मेरी शक्ति नही है। पाटण के लोगों को वहाँ जाकर क्या मुँह दिखाऊँ ?

सेठ ने उससे जान लिया कि उसके माथे पर ब्याज सहित पच्चीस हजार का कर्ज चढा हुआ है। एक ही मिनट में उसके हाथ में पच्चीस हजार रुपये रखकर उसे शाम को जाने वाली गाडी से पाटण रवाना कर दिया।

पाटण के लोगों का कर्ज तो अदा हो ही गया पर काफी समय से बीमार चल रहे अति वृद्ध पिता को बेटे का मुख देखना नसीब हो गया। इससे उसे बहुत आनंदानुभूति हुई।

नौकरों को सदैव ऐसे पिता तुल्य सेठ मिलते रहें।

## 47. कुमारपाल के पुत्र की कैसी प्रभुभक्ति

कुमारपाल के उस जवान पुत्र का नाम नृपसिंह था। अति अल्पायु में उसका देहावसान हो गया। जीवन के आखिरी क्षणों में हेमचंद्रसुरिश्वरजी उसे निर्यामणा (आराधना) कराने गये तब उन्होंने नृपसिंह की आँखों में आँसु देखे।

सूरिजी ने उसे मृत्यु की अनिवार्यता को समझाते हुए कहा:"समाधिपूर्वक मृत्यु का प्राप्त होना बहुत बडी बात है। मृत्यु की सम्भावना का विचार करके रोने की जरा भी आवश्यकता नही है।" नृपसिंह ने कहा :"गुरुदेव ! मैं मृत्यु के भयवश नही रो रहा, मैं अपने पिताजी की कृपणता पर सोचकर रो रहा हूँ। मेरे पिताजी आजकल संगेमरमर के जिनालय निर्माण करवा रहे हैं। मैं जब बड़ा हो जाऊँगा तब इस धरती पर सोने के सैकड़ो जिनालय निर्माण कराऊँगा। गुरुदेव ! मेरी इस अंतरेच्छा के अधूरी रह जाने के दु:ख के कारण रो रहा हूँ।"ये शब्द सुनकर सूरिजी की आँखें भर आयी। वे मन ही मन बोले :"कैसा जिनभक्त यह किशोर!"

## 48. नवाब को भी महाजन की कैसी मर्यादा!

वे पालनपुर के नवाब थे। एक बार वे अपने बेटे के साथ भोजन कर रहे थे। उसी वक्त गाँव में गड़बड़ हो गई। गाँव का महाजन नवाब साहब से मिलने के लिए गया। नवाब साहब ने भोजन करते करते गाँव के महाजन से बातचीत की। ऐसे में नवाब के बेटे ने बावर्ची से मच्छी लाने के लिए कहा।

यह सुनते ही नवाब ने अपने जवान बेटे को चाँटा जड़ दिया। उन्होंने कहा :"अरे मूर्ख ! तुम यह भी देख नही रहे हो कि हमारे समक्ष महाजन बैठा हुआ है और बिना किसी लाज-संकोच के तुम बेशर्म ! मच्छी मंगवा रहे हो।" पुत्र ने नवाब से –पिता से क्षमा याचना की तथा ऐसे व्यवहार के लिए महाजन से भी क्षमायाचना की।

## 49. ऐसे श्रोता को बोध दिया ही नहीं जा सकता

एकदा गौतम बुद्ध श्रोताओं को और अपने शिष्य समूह को एक साथ उपदेश दे रहे थे। कुछ समय बाद बुद्ध ने यकायक बोध देना बंद किया। बुद्ध उस सभा से चल दिये। श्रोतागण तथा शिष्यगण यह सोच में पड़ गया कि ऐसा क्यों हुआ होगा?

दूसरे दिन किसी ने बुद्ध से पूछा:"कल आप बोध देते देते एकाएक क्यों चल दिये ?"बुद्ध ने कहा :"मैं जब बोध दे रहा था तब मेरे दो शिष्य लगातार अपने पैर हिला रहे थे। उनकी ऐसी मानसिक चंचलता को देखकर मेरे मन में विचार आया कि मेरे शिष्य भी बोध लेने के लिए मानसिक रूप से स्थिर नही हैं जबकि मेरे श्रोता तो संसारी हैं, उनमें मैं मानसिक स्थिरता की अपेक्षा कैसे रख सकता हूँ ?"

"जहाँ चित्त की स्थिरता नही, वहाँ बोध देने से कोई लाभ नही।"-गौतम बुद्ध ने उत्तर दिया।

## 50. करूणा और ब्रह्मचर्य

कोई दृढ ब्रह्मचारी रास्ते पर से गुजर रहा था। उसने देखा कि कीच भरे रास्ते मैं कोई गाडा (शकट) फंस गया था। गाडे को बाहर निकालने के लिए गाडेवाला बैलों को बूरी तरह से पीट रहा था लेकिन बैलों के पैर कीच में बूरी तरह से फंसे हुए थे। अतः इतनी सख्त मारपीट के बावजूद भी गाडे को बाहर खींच लाने की ताकत वे पैदा नही कर पा रहे थे।

उस ब्रह्मचारी ने इस दृश्य को देखा। मार खा रहे बेचारे बैलों की दशा को देखकर उनकी आत्मा परेशान हो ऊठी। उसने गाडे वाले से इजाजत ली और बैलों को धुरा से मुक्त करके वह स्वयं धुरा से जुड गया और क्षणमात्र में पूरी ताकत लगाकर गाडे को कीचड से बाहर खींच निकाला।

करुणा और ब्रह्मचर्य इस जगत के सर्वोत्कृष्ट गुण हैं। उनमें यदि प्रभुभक्ति भी शामिल हो जाये तो जीवन का बेड़ा पार लग जाये।

## 51. लोटे को तो मांजना ही पड़ता हैं।

रामकृष्ण परमहंस के गुरु का नाम तोतापुरी था। वे एक विशिष्ट कोटि के सिद्ध पुरुष के रूप में उनके अनुगामियों में ख्यातिप्राप्त महात्मा थे। तोतापुरी रोज निश्चित समय पर नियमित रूप से ध्यान में बैठते थे। एक बार उनके सुविनीत शिष्य रामकृष्ण ने पूछा :"क्या आपके जैसे सिद्ध पुरुष को अब नित्यप्रति ध्यान में बैठने की आवश्यकता रहती है ?"

गुरु ने लाक्षणिक भाषा में उत्तर देते हुए कहा :"मेरे सामने पड़ा यह लोटा देखो, कितना चमक रहा है ! क्या तुम उसके चमकते रहने की वजह जानते हो ? उसकी वजह यह है कि उसे नियमित रूप से मांजा जाता है। ध्यान द्वारा यदि हम अपनी आत्मा रूप लोटे को मांजें नहीं तो आत्मा को दूषित होने में जरा भी देर नही लगती।"

## 52. नियमितता

जिन्हें भारत की प्रजा ने सरदार के रूप में अपना स्नेह दिया, वह सरदार पटेल एक दिन बेरिस्टर की उपाधि पाने के लिए विदेश गये थे। उनके निवास से काफी दूर विश्वविद्यालय की लायब्रेरी थी। वे उस लायब्रेरी में ठीक नौ के गजर पर पहुँच जाते थे। उनके समय में एक सैकण्ड का भी फर्क नही आता था।

अत: लायब्रेरी का चौकीदार वल्लभभाई के आते ही वहाँ के टावर की घड़ी का समय हमेशा मिला लेता था। जैसे ही वल्लभभाई का आना होता था कि तुरंत घडी में नौ बजे का समय मिला लेता था। कैसा कमाल ! टावर की घडी के अनुरूप वल्लभभाई चले या वल्लभभाई के आगमनानुसार घड़ी चले !

## 53. पूर्वजन्म का प्रमाण- तीव्र बुद्धि

शंकर की अवस्था मात्र पांच वर्ष की थी। वह खेल रहा था ,तब उसके पास से एक घुड़सवार राजा गुजरा। बालक के प्रतिभासम्पन्न भाल प्रदेश को देखकर राजा ने कहा :"क्या तुम कविता पाठ करोगे ?"उस बालक ने राजा से पूछा "कहिए कौन-सी कविता का पाठ करूँ ? प्राचीन रचना का पाठ करूँ या अभी रची हुई ताजा रचना का?" राजा ने कहा,"अभी तुम बहुत छोटे बालक हो। नयी कविता कैसे रचकर बोलोगे?"तब उस बालक ने कहा : "बालोऽहं मे महाराज ! न मे बाला सरस्वती।

अपूर्णे पंचमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम्॥"

"हे राजन् ! मैं बालक हूँ परंतु मेरी सरस्वती थोडे ही बालक है। भले ही मुझे पांच वर्ष पूरे न हुए हों पर मैं तीन जगत का वर्णन कर सकता हूँ। यह बालक है वही भविष्य के शंकराचार्य जी।

## 54. अभिमान करने से तो सो जाना बेहतर हैं।

उस आदमी का नाम शब्बी-शेख था। वह फारसी भाषा का विख्यात लेखक था। उसका पुत्र रोज रात्रि वेला में उठकर कुरान की आयत तैयार करता था। एक दिन शेख के घर मेहमान आये। शेख ने उनके समक्ष रात्रि वेला में भी अपने पुत्र के काम करने की भरपूर प्रशंसा की। उस समय पुत्र भी उपस्थित था। अतः अपनी प्रशंसा सुनकर उसे अभिमान हुआ।

तत्पश्चात् वह सबसे कहने लगा कि :"सारी दुनिया जब सोती है तब मैं कुरान की आयतें तैयार करता रहता हूँ।" उसके अभिमान की बात जानकर उसके पिता ने पुत्र से कहा :"अन्य की निंदा करने से अच्छा दिन में जगते रहने के बजाय तुम सोये रहो,यह अधिक उत्तम होगा क्योंकि तुम्हारे सोये रहने से परनिंदा तो नही होगी।"

## 55. दया इसी का नाम!

वह रेशमी कपड़ों का व्यापारी था। एक दिन की बात है। दुकान में अच्छी बिक्री हो रही थी। वह व्यापारी उसी में लीन हो गया था। उस समय वहाँ एक भिखारी जाकर खड़ा हुआ। कुछ देर रुककर वह याचक आगे बढने लगा। दस-बीस कदम ही वह आगे चला था कि उस व्यापारी की समझ में आया कि वह भिक्षुक कुछ भी लिये बिना अपने आंगन से चला गया है।

और वह व्यापारी सारे ग्राहकों को परे छोडकर उस याचक के पीछे दौड़ा और उसके पैरों में गिरकर क्षमा मांगते हुए कहा कि :"बिक्री में खोया हुआ मैं आपका ध्यान नही रख पाया-मुझे माफ कीजिए।" इतना कहकर उसने अपनी जेब में जो कुछ था वह उस याचक को दे दिया। साथ ही साथ अपना ओवरकोट भी उतारकर उसे दे दिया और.....

पूर्ण संतोष के साथ वह व्यापारी अपनी दुकान लौट आया।

## 56. माता ने पुत्र को सही राह दिखाई!

यह घटना अकबर और जहांगीर के समकालीन बनारसीदास से जुड़ी घटना है।

उन्होंने अल्पायु में किसी सेठ के घर चोरी की थी। चोरी के सामान की गठरी बांधी, पर वजनी होने के कारण वह उस गठरी को उठा नही पाया। उस समय सेठ यकायक नींद से जग गये। उस किशोर के पास जाकर उन्होंने कहा :"तुम से यह गठरी उठायी नही जा रही है तो चलो मैं तुम्हारी मदद कर देता हूँ। लो ले जाओ। मैं इन सब के बिना चला लूंगा ,जबकि तुम्हारे लिये ये सारी चीजें खूब उपयोगी होंगी।" गठरी लेकर वह किशोर घर पहुँचा। माता को सारी हकीकत बता दी। माँ अत्यंत दुःखानुभव करने लगी, उसने कहा :"बेटा ! यह गठरी तुम उसके मालिक को सौंप दो।"माँ के आदेशानुसार किशोर उस गठरी को वापस रख आया और तब से आजीवन चोरी का त्याग किया।

## 57. हम किसके साथ? मानव या भगवान के साथ?

उस संत का नाम खैयास था। एक बार वे अपने शिष्यों के साथ नमाज अदा कर रहे थे। उस समय वहाँ एक शेर घुस आया। उसे देख शिष्यों ने नमाज का कॉल तोडा और पेड़ पर चढ गये लेकिन संत खैयास ने तो अपनी नमाज जारी रखी। कुछ देर बाद वह शेर वहाँ से वापस लौट गया। सारे शिष्य पेड़ पर से उतरकर गुरु के पास बैठ गये।

नमाज पूर्ण होने के बाद खैयास को मधुमक्खी ने दंशित किया। चीखते हुए खैयास ने कहा :"जल्दी करो, मुझे मधुमक्खी ने काटा है।"

शिष्य तो अवाचक् रह गये और पूछा :"मधुमक्खी के काटने का आपको अनुभव हुआ और दहाड़ता हुआ शेर आया तब आपको कुछ नही हुआ ?"

शिष्यों का सवाल सुनकर जवाब देते हुए संत खैयास ने कहा :" "शेर की दहाड के समय मैं भगवान के पास था-साथ था। इसलिए मुझे कुछ नही हुआ। अब मैं तुम्हारे साथ बैठा हूँ इसलिए मधुमक्खी से भी डर गया।"

## 58. अंगरक्षक का कैसा आत्मबलिदान!

विक्रम की बारहवीं सदी में हुए पृथ्वीराज चौहाण एक बार युद्ध में जख्मी हुए। उन्हें लेने के लिए छावनी से आने वाले सिपाहियों को आने में कुछ देर लगी। उस समय पृथ्वीराज पर किसी गिद्ध ने हमला किया। यह गिद्ध राजा की देह को नोंच डाले तो क्या हो? इस कल्पना से राजा के निकट जख्मी पडा अंगरक्षक सिहर ऊठा।

वह तलवार की मदद से अपने शरीर से मांस के टुकडे काट-काटकर उस गिद्ध की ओर फेंकता रहा। बार-बार ऐसा करने से पृथ्वीराज चौहाण बच गये। ऐसे में सैनिक भी आ पहुँचे और सम्राट को छावनी ले गये। सच्चे अंगरक्षक का अपने स्वामी के लिए कैसा आत्म बलिदान !"

## 59. व्यापारी की कैसी नीतिपरायणता!

किसी सेठ ने अपने मुनिम को कस्टम से गठरी छुड़वाने केलिए भेजा। यह गांठ रेशमी साड़ी का था। मुनीम ने जकात के पैसे जमा करवा दिये और माल लेकर दुकान लौटा। सेठ को जकात की जमा करवायी हुई राशि कम लगी। अतः उन्होंने मुनीम से इसकी वजह पूछी।

मुस्कुराते हुए मुनीम ने कहा:"गांठ तो रेशमी साड़ियों की थी पर मैंने अफसर को सूती वस्त्र की बताया। अतः इस जकात का बिल कम आया।"

यह सुनकर सेठ सीधे कस्टम के ऑफिस पहुँच गये और अपने मुनीम द्वारा की गई बदमाशी को बताकर देय राशि की बकाया शेष राशि जमा करवा दी। कस्टम अफसर ने सेठ का बहुत बहुत धन्यवाद किया। दुकान वापस लौटकर सेठ ने मुनीम से कहा :"अब कि यदि ऐसी अनीति की गई तो नौकरी से निकाल बाहर कर दूँगा।"

## 60. भगवान से बढ़कर और किसकी आज्ञा होगी भला?

लोर्ड कर्झन को बंगाल की यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर आशुतोष मुखरजी को एक बार किसी कार्यवश विदेश भेजने की आवश्यकता हुई। उन्होंने अपनी इच्छा आशुतोष मुखरजी के समक्ष व्यक्त की। आशुतोष ने विदेश जाने के लिए अपनी माँ से इजाजत मांगी पर माँ ने इन्कार किया।

अत:आशुतोष ने कर्झन को विदेश नही जाने की अपनी इच्छा व्यक्त कर दी। लोर्ड कर्झन ने पुनः उन पर दबाव डाला और कहा कि जाकर आप अपनी माँ से कहिए कि लोर्ड कर्झन की आज्ञा है और उनकी आज्ञा को तो मानना ही पड़ता है। "और उस समय आशुतोष ने गम्भीरता धारण करते हुए कर्झन को बता दिया कि :"इस जगत में मेरी माँ की आज्ञा से बढकर किसी की आज्ञा हो ऐसा मैं नही मानता हूँ। क्षमा कीजिए। यदि आप मुझे सेवा मुक्त कर देना चाहें तो कर दीजिए पर माता की आज्ञा की अवमानना करके मैं विदेश तो जा ही नही सकता।"

## 61. नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार रखें।

श्री ताराकान्त रॉय उस समय बंगाल के राजा के निजि सचिव के रूप में सेवारत थे। अनेकों बार उन्हें राजमहल में घंटों भर काम करना पड़ता था।

एक बार ऐसे ही निमित्त वे रात्रि के बारह बजे घर वापस लौटे। उस समय अपने शयनखण्ड में उन्होंने देखा कि उनका एक नौकर बिछौने पर एक कोने में माथा रखकर गहरी नींद सोया हुआ था। ताराकांत रॉय ने बिछौने पर सोना टाल दिया क्योंकि उस बिछौने पर यदि वह सोने केलिए जाये तो उस नौकर की नींद टूट सकती थी। अत: उन्होंने एक चटाई बिछाकर जमीन पर सोना पसंद किया।

सुबह होने पर नौकर ने जगकर अपने सेठ को जाजम पर सोये हुए पाया। वह आश्चर्यचकित हो गया। सेठ के जगने पर उसने पूछा तो सारी हकीकत जानकर वह सेठ के चरण चूमने लगा। उसने गौरव अनुभव किया कि उसे ऐसे महान सेठ प्राप्त हुए हैं।

## 62. मौत से भी अधिक भय विश्वासघात का

जब महाराणा प्रताप अरावली के पहाड़ों में घूम रहे थे तब उनके साथ रघुपतिसिंह नामक एक वफादार सैनिक था।

एक बार अपने पुत्र की बीमारी की खबर सुनकर वह उसे मिलने के लिए अपने गाँव जाने के लिए निकला। मुगल सैनिकों ने रघुपतिसिंह को बीच राह ही पकड़ लिया। उसने मुगल सैनिकों से कहा :"मुझे अपने आसन्नमृत्यु बेटे से मिल लेने दीजिए बाद में मैं स्वयं हाजिर हो जाऊँगा।"

सैनिकों ने उसे जाने दिया और रघुपतिसिंह ने कहे अनुसार अपने वचन का पालन किया। तब एक मुगल सैनिक ने रघुपतिसिंह से पूछा कि "क्या तुम्हें मौत का डर नही है ?"रघुपतिसिंह ने उत्तर देते हुए कहा :"हम हिन्दुओं को मौत से भी अधिक डर विश्वासघात से होता है।"

यह सुनकर मुगल सैनिक ने प्रसन्न होकर रघुपतिसिंह को मुक्त कर दिया लेकिन मुक्त कर देने

वाले सिपाही की फरियाद अन्य सिपाही ने सेनाधिपति से कर दी। अतः सेनाधिपति ने उस सैनिक को बुलाकर अत्यंत क्रोध से तोप के मुख के साथ बांधकर उसे खत्म कर देने की सजा फरमायी। इस प्रकार जब उसे तोप के मुख के साथ बांधा गया तब अचानक रघुपतिसिंह को खबर मिलते ही शीघ्रातिशीघ्र मुगल सेनापति के पास पहुँच गया। उसने कहा :" मुझे बचाने वाले को मारना नहीं। उसके बदले मुझे ही दण्ड दिया जाये। मैं तैयार हूँ।"इससे अधिक क्रोधित हुए उस सेनापति ने उसे भी पकड़वा कर तोप के गोले के साथ बांधा।

अब यह बात किसी तरह बादशाह अकबर के पास गई। उसने सजा मौकूफ करवाकर सारी हकीकत को जाना तो वह मुगल सैनिक के प्रति बहुत खुश हो गया, जिसने रघुपतिसिंह को रिहा कर दिया था। उस मुगल सैनिक को बादशाह ने नौकरी में पदोन्नति दी।

इस तरफ महाराणा प्रताप को खबर हुई तो उन्होंने भी रघुपतिसिंह की पदोन्नति कर दी।

## 63. आत्मौपम्य भाव

जब रामकृष्ण केन्सर की बीमारी की व्यथा भुगत रहे थे, जब गले के केन्सर के कारण उनका आहार लेना बंद हो गया था तब भी मानसिक रूप से रामकृष्ण अत्यंत प्रसन्न थे। वे सबसे कहते थे कि:"असंख्य किटाणुओं को मेरे शरीर में जियाफत मिली है। आनंद के कैसे क्षण गुजर रहे हैं !" एक बार भक्तों के अतिआग्रह के चलते अपनी इष्टदेवी कालिका से कहना पडा कि "हे माँ! मैं खा सकूँ उतना ही दो।" कहा जाता है कि माँ ने उनसे कहा :"अरे राम ! तुम कितने मुख से खा रहे हो और तुम्हें लगता है कि मैं खा नही सकता और तुम कुछ खा सको इसलिए मुझे कुछ करके देना है।"

यह सुनकर राम स्तब्ध हो गये। भक्तों के आग्रह के कारण अपने से हुई भूल समझ में आयी और कुछ देर तक आत्मौप्यभाव से दूर रहने के कारण घंटों तक अस्खलित आँसुओं से खूब रोते रहे।

# 64. इन्स्टंट टर्निंग पोडण्ट

सिद्ध ने अपने पास रहे पाँच सौ द्रम्म जुए में हारे। यदि द्रम्म अदा न करे तो अपना शिरच्छेद कर देने की शर्त मित्रों के समक्ष स्वीकार करके दाँव खेलने लगा। वह पाँच सौ के पाँच सौ द्रम्म हार बैठा। उसने विचार किया कि मैं पाँच सौ द्रम्म कैसे दे सकूंगा ?

यदि मैं अपनी आखिरी पूँजी भी दे दूंगा तो मैं क्या खाऊँगा-पीऊँगा ? व्यवसाय भी कैसे करूँगा? इसलिये वह शर्त तोड़कर भाग खड़ा हुआ और किसी जैनाचार्य के कमरे में घुस गया और कमरे को अंदर से बंद कर दिया।

शर्त के अनुसार सिद्ध को मारने केलिए गंडासा (धारियुं) लेकर जुआरियों ने पीछा किया। उन्होंने जैनाचार्य से सिद्ध को हवाले कर देने की मांग की। उस वक्त गाँव के धर्मात्मा श्रावक भी वहाँ पहुँच गये।

उन्होंने भी सिद्ध को सौंप देने की विनती जैनाचार्य से की। पलक झपकते (क्षण मात्र में) ही आचार्य महाराजा ने आये हुए श्रावकों को समझा दिया और जुआरियों को ५०० द्रम्म देकर विदा किया क्यों कि अंदर बैठा सिद्ध जिनशासन का अद्‌भुत सितारा था।

जुआरियों के जाने के बाद उपकारी आचार्यश्री की गोद में मस्तक रखकर सिद्ध रोने लगा। कुछ आश्वस्त होने पर शांत-स्वस्थ हुआ और कहने लगा :"गुरुदेव !

आज से आप मेरे लिये सर्वस्व हैं। मुझे आप अपना शिष्य बनाइए।"

और सिद्ध को दीक्षा प्रदान की गई। भविष्य में वही महात्मा हमारे "उपमिति-भव-प्रपंच-कथा"के विश्वविख्यात रचयिता सिद्धर्षि गणि।

## 65. धर्म के स्वांग में ही अधर्म

भूतकाल में किसी राजा को भयंकर कोढ हुआ था। किसी ने उसे सलाह दी कि रोज हंसों का तीन गिलास ताजा रक्त का पान किया जाये तो ही इस बीमारी से मुक्ति मिल सकती है।

राजा ने तदानुसार व्यवस्था की। पहले दिन राजा के सेवक हंसों को पकड़ने के लिए सरोवर गये। उन्हें देखकर सारे हंस उड गये। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ।

पर तीसरे दिन कमाल हो गया। हंस उडने के बजाय सामने चलकर आये। ऐसा होने का कारण यह था कि राजा के सेवक सैनिक भेष में नही अपितु साधु के भेष में आये थे। वे अपने साथ मिठाई की टोकरियाँ लाये थे। बस, इसी में ये हंस फँस गये। नजदीक गये सभी हंसों को पकड़ लिया गया और उनकी गरदन मरोडकर मार डाला गया। इसी को धर्म के स्वांग में ही अधर्म कहते हैं !

देखिये ना, आज की चुनाव व्यवस्था। जिसमें राजनीतिज्ञ भी ऐसे ही अनेक स्वांग रचाकर बेचारे मतदाता रूपी हंसों को अपने कपट-जाल में फँसाते हैं ना !

## 66. अहिंसा कायर के वश की बात नहीं

एक बार अहमदाबाद स्थित गुजरात विद्यापीठ में गई हुई लड़कियों को लड़कों ने छेड़ा। अतः लडकियों ने किशोरलाल मशरुवाला से मिलकर सारी बातें बताई। बात सुनकर तुरंत मशरुवाला ने कहा "आप लोगों ने उस समय चप्पल क्यों नही मारे ?" लडकियों ने कहा कि "यह तो हिंसा कहलाये ना ! बापू ने तो हमें हिंसा करने से स्पष्ट इन्कार किया है।" मशरुवाला ने फिर कहा :"तो फिर आप लोग स्वयं बापू से जाकर मिलें और पूछ कर आइए।" लडकियाँ बापू से जाकर मिलीं। अपनी आपबीती सुनायी। बापु ने कहा :"मशरुवाला की बात एकदम सही है। तम्हारे साथ कोई बलात्कार करने आये और उस पर खंजर का वार कर दो –उसे मैं अहिंसा ही कहता हूँ। हमारी अहिंसा को कायरता न समझें।"

## 67. धर्म में तो सदा अतृप्ति ही रहनी चाहिये....

यह बात उस वस्तुपाल मंत्री की है जिसके यहाँ पांच सौ साधु-साध्वीजी बहोरते थे। पंद्रह सौ साधु भिक्षा ले जाते थे और हजारों साधर्मिक उनके यहाँ भोजन ग्रहण करते थे।

यह उसी वस्तुपाल की बात है जिसने धर्म के क्षेत्र में करोड़ों रुपयों का दान किया था। उन्होंने अद्‌भुत ज्ञानभण्डारों का सृजन किया था। जिसने बारह बार सकल संघ सहित शत्रुंजय तीर्थ की छ'रीपालित यात्रा की थी।

जब तेरहवें संघ में वे मृत्युशैय्या में थे तब उनके आस-पास साधु-साध्वीजी बैठे हुए थे। समग्र संघ उन्हें नवकार मंत्र सुना रहा था। उस समय एकाएक मंत्रीश्वर की आँखों में आँसू दिखाई दिये। आचार्यश्री ने उसकी वजह पूछी तो मंत्रीश्वर ने बताया कि :" पाविओ जिण-धम्मो हारिओ" गुरुदेव ! मैंने जन्म से ही जिनेश्वर धर्म प्राप्त किया है परंतु मैंने जरा भी विशेष धर्माराधना नही की। सचमुच मैं हार गया हूँ। ऐसा कहकर वे जोर जोर से रोने लगे।

जब उनका देहविलय हुआ तब संसार त्यागी साधु-साध्वीजी की आँखें भी बरसने लगीं.....कैसी उत्तम समाधि मृत्यु....!

## 68. प्रेम देने से ही प्रेम मिलता हैं!

किसी गौशाला में आदिवासियों ने अत्यंत तूफानी साँड को रख दिया। यह साँड इतना तो तूफानी था कि गौशाला के कार्यकरों केलिए भी शरदर्द हो गया। उसे नियंत्रित करने का कार्य अति कठिन होता था। एक दिन गौशाला के दस वर्षीय लडके ने गौशाला के कार्यकरों से कहा कि "साँड को सम्हालने का काम उसे दिया जाये।"

कार्यकरों ने उसे यह काम सौंपा और तुरंत उस साँड को शांत करने केलिए वह कुशल

आदिवासी लडका आगे बढा। मरखन्ने साँड के पास जाना कोई बच्चों का खेल नही था पर चौकस इरादे केसाथ वह लडका साँड के पास पहुँचा और उसके गले पर तथा माथे पर इतने प्यार से अपने हाथ से सहलाया कि साँड एकदम शांत हो गया और उसके शरीर को प्यार से सुंघने लगा।

दूर खडे कार्यकर भी चकित रह गये। उन्होंने उस लडके से पूछा कि "ऐसा सम्भव कैसे हुआ ?"लडके ने एक ही बात में अपना विज्ञान समझाते हुए कहा कि :"प्रेम देने से प्रेम मिलेगा ही।

## 69. पाठशाला के पाँच को (पांच पैसे) का प्रभाव

वह धनवान युवक विदेश गया था तब भारत में उसी की अध्यक्षता में किसी धर्मसभा का आयोजन तय हुआ। सभा के दिन वह युवक भारत आया। हवाई अड्डे से सीधे उसकी मोटर कार सभाखण्ड पर आ गई। वक्त पर पहुँच जाने का उस युवा के मुख पर संतोष झलक रहा था। सभामंच पर आकर अध्यक्ष के आसन पर जैसे ही बैठने के लिये गया कि उसकी नजर ने बहनों के विभाग में बैठी उसकी माता को देखा। आसन पर बैठना छोडकर वह मंच पर से उतरकर माता के चरणों में झुक गया। आशीष लेकर वह पुनः अध्यक्षासन पर जाकर बैठा।

सभासद यह देखकर चकित हो गये। ऐसी मातृभक्ति का कारण क्या है ? ऐसा पूछने पर उस युवक ने बताया कि "बचपन में जब हम पाठशाला जाते थे तब हमारे पण्डितजी माँ-बाप के चरण छूने वालों को प्रतिदिन पाँच पैसे (पांचका) ईनाम के रूप में देते थे। इसी पांचके ने हमारे अंदर माता-पिता के चरणस्पर्श करने के जोरदार संस्कार डाले थे। इसी क्रमानुसार,आज मैंने सबसे पहले अपनी माता को देखकर उनके चरण स्पर्श किये।"

देखा ना पाँचके का परचा (चमत्कार) !

## 70. कभी भी पीछेहठ करने में पीछेहठ मत कीजिए

"वंदे मातरम् "गीत के रचयिता बंकिमचंद्र चट्टोपाध्यायजी के जीवन की यह घटना है।

एक बार उन्होंने सार्वजनिक रूप से व्यक्त अभिप्राय का अस्वीकार कर दिया। अतः लोगों ने उनकी खूब आलोचना की। स्वयंकथित बात से क्यों मुकर गये ?"

कभी किसी सार्वजनिक सभा में बंकिमचंद्र ने लोगों को उत्तर देते हुए कहा कि," अपने विचार में कभी भी परिवर्तन न करना पड़े ऐसा इस संसार में सर्वज्ञ के अतिरिक्त और कौन हो सकता है भला ?और यदि कोई ऐसा आग्रह रखता ही हो तो मेरी नजर में वह जड़ है,कपटी है। मुझे अपना पहला विचार क्षतिपूर्ण लगा और मैंने तुरंत उसे बदल दिया। इसमें मैंने कुछ गलत नही किया है। मैं ऐसा कपटी और जड़ नही बनना चाहता।." कितनी सच बात है यह ! गाड़ी गलत राह पर चढ गई हो तो उसे कौन सही मार्ग पर नही लाता?"

## 71. दो की लड़ाई में तीसरे को मलाई

एक बार एक जंगल में बाघ और शेर आमने सामने हो गये। दोनों के बीच तुमुल युद्ध हुआ। कोई जीते नही और कोई हारे भी नही। दोनों अणनम अजेय। एक दूसरे के पंजों के नाखून प्रहार के कारण दोनों के शरीर से खून रिसने लगा। समझदार शेर ने उत्तेजित बाघ से एक क्षण थम जाने के लिये कहा। जब बाघ थम गया तो शेर ने उससे कहा कि "हमें लड़ना है तो भले लड़ते रहें पर इस आकाश की ओर एक नजर देख। देख कितने सारे गिद्ध मंडरा रहे हैं। उन्हें हमारी मौत की प्रतीक्षा है, क्योंकि उन्हें हमारे रक्त और मांस से जियाफत उड़ानी है। इसीलिए वे हमारी लड़ाई से आनंदित हैं। अब यदि तुम चाहते हो कि हमें लड़ ही लेना है तो चलो हम लड़ लेते हैं।" शेर की इस बात को अच्छी तरह से समझ लेने के बाद बाघ तुरंत उल्टे पाँव जंगल में भाग गया। आज कईं ऐसे लोग होंगे कि जो दो लोगों की लड़ाई से अपनी दाल-रोटी का जुगाड़ करने के लिए पेट्रोल छिड़कते होंगे !

## 72. जिसका जो व्यसन

उस राजा का हाथी था। एक बार उस हाथी पर आरूढ होकर राजासाहब सैर के लिए निकले थे कि रास्ते में आयी नदी के कीचड़ में हाथी ऐसा धँस गया कि महावत के द्वारा किये गये अंकुश के सारे प्रहार निष्फल हुए। कीचड़ से बाहर निकलने के बजाय वह कीच में और अधिक धँसता जाता था।

अंततोगत्वा निवृत्त हुए वृद्ध महावत से सलाह मांगी गई। उसने कहा:" यह युद्ध का हाथी है। अत: युद्ध के प्रारम्भ में जो शंखनाद और गर्जनाएँ की जाती हैं वैसी आवाजें की जाये तो यह हाथी इस कीच से बाहर निकलेगा।

हुआ भी ऐसा ही। सचमुच शंखनाद और गर्जनाओं की जोरदार आवाजों से युद्ध के लिए प्रहर्षित हुआ हाथी एकदम उछलकर बाहर आ गया।

## 73. मृत्युवेला में टॉयस्टॉय का भयंकर गुस्सा

टॉलस्टॉय की जिंदगी के अंतिम तीन-चार दिवसों में उसकी पत्नी के साथ टॉलस्टॉय को झगड़ा हो गया। झगड़े का मूल कारण इतना ही था कि टॉलस्टॉय ने अपनी मूल्यवान कृतियाँ किसी संस्था को मुफ्त में दे दी थी। इस वजह से पत्नी के साथ झगड़ा हुआ। कैसे भी करके यह झगडा शांत नही होने से त्रस्त टॉलस्टॉय घर से निकल गया। उस समय उसे न्युमोनिया का भयंकर ज्वर लगा हुआ था। जब वह स्टेशन पहुँचा तब मौत बहुत करीब आ गई थी। वह स्टेशन के बांकडे (बैठने का स्थान) पर ही सो गया। वहाँ लोग जमा हो गये। उसने मरने के आखिरी क्षण में एक ही बात की कि "जो करना चाहो करना लेकिन मेरी पत्नी को मेरे निकट नही आने देना।"

मृत्यु की आखिरी क्षणों में भी कितना क्रोध !

# 74. हिटलर के नाम पर एक किशोर का पत्र

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान खूंखार हुए हिटलर के नाम एक किशोर ने पत्र लिखा। जिसमें उसने हिटलर को सम्बोधित करते हुए लिखा कि :" हे जर्मनवासिओ !

आप किसलिए लड़ रहे हैं, यह हमारी समझ में नही आ रहा। आपकी जीवन-शैली बहुत ऊँची है। फिर भी आप अमरिका के खिलाफ क्यों युद्ध कर रहे हो ?

शायद आप अमरिका से आधे होंगे पर हमारे जैसे गँवारों से तो पांच-दस गुना बढकर हैं। हम कदापि ईर्ष्या के वश होकर दुनिया को ताराज करने के लिए उद्यत नही होते। शायद आप अमरिका की भाँति चांदी के चम्मच से नही खा सकते होंगे पर आपके पास चमच तो है ही ना ? हमारे पास तो वह भी नही है।

कभी कभी तो खाने के भी लाले पड़ जाते हैं। हिटलर साहब ! आपका झगड़ा तो छोटे बच्चों के झगड़े जैसा लगता है।

अमरिका में बारह माले का मकान हो तो हमारे लिये पाँच माले का ही क्यों ? पर हिटलर साहब ! मैं पूछता हूँ कि आपके पास पाँच माले का मकान तो है ना ? हमारी तरह झोंपडा या बेघर (अनिकेत) तो नही हैं ना ?"

किशोर ने कितनी सुंदर बात हिटलर को बताई। -अभी बाईबल का वह वाक्य याद आता है –"कब फलेगा ? यह तो मालूम नही कि तलवारें हँसिया होंगी ! और भाले हल बन जायेंगे ?"

## 75. धर्मक्रिया में फल की अधीरता नहीं करनी चाहिए

जयंती नामक महाश्राविका को परमात्मा महावीर देव ने एक चुटकुला सुनाया था कि एक गाँव के दो भाई मित्र के घर गये। वहाँ उन्होंने अतिसुंदर रंगोंवाली मुर्गियाँ देखी। ऐसी सुंदर मुर्गियाँ हमें भी मिले ऐसी इच्छा मित्र के समक्ष व्यक्त की। मित्र ने दो सगर्भा मुर्गियाँ मित्र को उपहार केरूप में दीं। दोनों भाई एक - एक मुर्गी अपने अपने घर ले गये। यथासमय दोनों मुर्गीयों ने अंडा दिया । बड़ा भाई धीरजपूर्वक मुर्गी द्वारा अंडे के हो रहे जतन को देखता रहता है लेकिन छोटा भाई अधीर हो गया। बार-बार अंडे को सहलाकर कहने लगा कि :"इसमें से बच्चा जल्दी बाहर निकले तो बड़ा हो जाये। ऐसा बार-बार करने से मुर्गी ने अंडे को सेना बंद कर दिया और उस अंडे से कभी भी बच्चा प्राप्त नही हुआ लेकिन बड़े भाई के धैर्य के कारण चूजे का प्रसव हुआ। इस प्रकार छोटा भाई असफल रहा।

परमात्मा महावीरदेव ने जयंती से कहा कि: "हे जयंती ! धर्म की धर्मक्रियाएँ निश्चित फल देकर ही दम लेती हैं परंतु उस फल को लेकर अधीरता का सेवन करने वाली आत्माएँ जानबूझकर फल को गँवा बैठती हैं।"

## 76. क्या ईश्वर हैं?

वह नितांत नास्तिक था। वह सब से कहता फिरता था कि "God is No where-ईश्वर कही नहीं है।" उपरांत कही अपनी मौत न हो जाये इसलिए उसने दो-चार फैमिली डॉक्टर भी रखे थे। वे रोज उसकी शारीरिक जाँच करते रहते थे और सच में उसके नख में भी कभी कोई बीमारी नजर नहीं आयी थी।

लेकिन एक दिन तो आ ही गया जब वह आईने के समक्ष खडे होकर बाल बना रहा था तब बालों के बीच रहे एक सफेद बाल को देख लिया। यह देखकर वह बहुत अकुला गया।

उसने डॉक्टरों को डाँट पीला दी कि "आप लोगों ने मेरा क्या ध्यान रखा ? मेरे माथे पर सफेद बाल कहाँ से उग आया ?" दो वर्ष बीत जाने पर पूरा मस्तक श्वेतकेशी हो गया और उसे एक दिन

मौत की सवारी आती हुई महसूस होने लगी। वह बोल ऊठा :"No where is God." मेरा यह वाक्य तो अटल है परंतु उसमें जो "w" है, उसे where के साथ रखने के बजाय अब "No" के साथ जोडूंगा और Now बनाऊँगा और where का here करूँगा। अब मैं अपनी मृत्यु के अंतिम क्षण तक कहूँगा कि Now here is God." अरबी कहावत कितनी यथार्थ है :"श्वेत केश जैसा जगत में अन्य कोई उपदेश नहीं।"

## 77. अपनों के द्वारा पहुँचाये गये दुःख से अधिक पीड़ा होती हैं।

लोहार के यहाँ एक दिन सोना और लोहा दोनों टीपे जा रहे थे। टीपे जा रहे सोने से कोई आवाज नही आ रही थी जबकि लोहे से बहुत आवाज आ रही थी।

उस समय सोने ने लोहे से इसकी वजह पूछी, तब लोहे ने सोने से कहा :"हम दोनों को जो हथौड़ी टीप रही है वह लोहे से बनी है। तुम उसके जातिबंधु नही हो और लोहे से टीपे जा रहे होने पर भी तुम चीखते-चिल्ला नही रहे हो लेकिन वह तो मेरा जातिबंधु है। इसलिए मुझे बहुत पीड़ा होती है। क्या मुझे मेरा जातिबंधु ही ऐसे टीप सकता है? इस विचार से मैं बहुत चीखता-चिल्लाता हूँ। अपने स्वजन के वचन बहुत कडुए लगते हैं। यह बात अब सच्ची प्रतीत होती है।

## 78. सच्चा धर्मीजन कभी दुःखी नहीं होता।

किसी तथाकथित धर्मीजन ने एक दिन गौतम बुद्ध से पूछा :" मैं दया आदि अनेक धर्मो का सेवन करता हूँ तथापि मुझे अपने जीवन में सुख का अनुभव क्यों नही हो रहा ?"

गौतम बुद्ध ने कहा : "मैं इस बात का जवाब बाद में दूंगा। फिलहाल तो तुम मेरे साथ उस बगीचे

में टहलने के लिए चलो।"

वे दोनों बगीचे में पहुँचे। वहाँ कुएँ पर कोश चल रहा था। उस कोश में अनेक छेद होने के कारण जितना पानी उसमें भरता था, उसमें से अधिकांश पानी कुएँ में वापस बह जाता था।

यह दिखाकर गौतम बुद्ध ने उस धर्मी से कहा :"जिसके धर्म में अधर्म रूपी कोश के छेद हुए हों उसके जीवन में सुख रूप पानी कैसे पहुँच सकता है ?"

तथाकथित धर्मीजन अपने सांसारिक जीवन में अनेक उचित-अनुचित करते रहते हैं तो उन्हें यह सवाल करने का क्या अधिकार है कि :"इतना धर्म करने पर भी जीवन में सुख क्यों नही है ?"

सवाल तो यह उठता है कि ,"इतना भी सुख उनके जीवन में क्यों है ?"

## 79. मारने वाला को भी जीवित रखा-कैसा आर्यदेश!

वह एक साधुपुरुष थे। उन्होंने अपनी तेज जबान के चलते अनेक शत्रु पैदा किये थे परंतु वे इस बात से लापरवाह थे।

उनके शत्रुओं ने इस साधु की हत्या करने के लिए अपने साथी को रसोइये के रूप में रख दिया। रसोइये ने मौका देखकर भोजन में विष मिला दिया। साधु ने उस विषाक्त भोजन को खा लिया। जैसे ही उसे विष का असर होने लगा कि उसे हकीकत समझ में आ गई। उस साधु ने अपने पास पडे बीस रुपये उस रसोइये को देते हुए कहा कि "तुम इन रुपयों से रेल का टिकट कटवाकर अपने वतन चले जाओ। अन्यथा मेरे भक्त तुम्हारे राई जैसे टुकडे कर देंगे।"

रसोइये की आँख से अश्रुधार बह चली और पछतावे की आग से नखशिख जलते हुए वहाँ से निकल गया।

कैसा यह देश ! कैसे उसके साधु !

## 80. मौत का अहसास कितनी ताकत देता है!

किसी सेना में दो सैनिक थे। उनमें से किसी एक सैनिक ने अन्य सैनिक की पत्नी से दुर्व्यवहार किया। उस सैनिक को इस बात का पता चल गया। उसने दुराचारी सैनिक से कहा : "चलो,हम दोनों तलवार से लड़ें। जो जीतेगा वह मेरी पत्नी का स्वामी होगा।"

दुराचारी सैनिक ने कहा "मुझे तो तलवारबाजी करना आता ही नही और तुम तो कुशल तलवारबाज हो। मैं तुम से कैसे लड़ सकता हूँ ? फिर भी अब जब किसी भी क्षण मरना तो है तो चलो, हम दोनों लड़ ही लेते हैं।"

....और तलवारबाजी शुरू हुई। कुछ ही क्षणों में दुराचारी सैनिक ने तलवारबाज को घायल करके धराशायी कर दिया।

उस सैनिक ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् उसने सैनिक से पूछा :"तुम्हें तलवारबाजी आती ही नही थी तो तुम जीते कैसे ?"दुराचारी सैनिक ने कहा :" मुझे अपने सामने अपनी मौत नजर आती थी और इस मौत के दर्शन से ही मुझे ऐसी ताकत प्राप्त हुई और मैंने तुम्हें हरा दिया।"

यदि हमें अपनी मौत लगातार दिखने लग जाये तो जीवन में धर्म करने की अनहद शक्ति हमें प्राप्त हो जाये !

## 81. जयकारा तो भगवान का ही बुलायें

दो अंध फकीर थे। एक बार उनके पास एक राजा गया। पहले फकीर ने राजा का जयकारा बुलाया और दूसरे ने भगवान के नाम का जयकारा बुलाया। दोनों ने राजा से याचना की। राजा के मन में अपना जयकारा नही बुलाने के कारण दूसरे फकीर के प्रति द्वेषभाव पैदा हुआ।

राजमहल जाकर उसने एक बड़ी पतीली मंगवायी। उसमें कुछ सोनामुहरें और मीठे चावल रखे। यह पतीली पहले फकीर को भिजवायी। पहले नंबर के फकीर ने चावल खाने के बाद बचे हुए चावल सहित वह पतीली दूसरे फकीर को दे दी। दूसरे फकीर को चावल के साथ उसमें रखी सोनामुहरें भी मिली।

दूसरे दिन राजा वहाँ आया। दोनों फकीरों ने पूर्ववत् जयकारा किया। दोनोंने राजा से कहा :"हे राजन् ! कल जो दिया था,वह आज भी दीजिए।"

राजा को इस बात को लेकर आश्चर्य हुआ कि दूसरे फकीर ने ऐसा क्यों मांगा ?"मैंने तो उसे कुछ भेजा ही नही परंतु तलाश करवाने पर पता चला कि भगवान का जयकारा करने वाले को मात्र चावल ही नही मिला पर सोनामुहरें भी मिली हैं। तब भगवान के जयकारे की महिमा राजा की समझ में आ गई।

## 82. तकलीफों के बीच भी धर्म करते रहें।

एक बार एक राजकुमार अपने प्यासे घोड़े को पानी पिलाने के लिए रहँट के पास ले गया। रहँट से खट्...खट् आवाज निकलने के कारण घोड़ा ठीक से पानी नही पी पा रहा था। राजकुमार ने रहँट बंद करने के लिए कहा तब उसके मालिक ने राजकुमार से कहा कि "भला राजकुमार जी ! यदि इस खट्...खट् आवाज को बंद कर दूंगा तो रहँट चलेगा नही और फिर घोड़ा पानी कैसे पियेगा ? अतः इसी आवाज की परिस्थिति में ही घोड़े को पानी पीना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही है।"

शान्ति के क्षणों में ही धर्म हो सकता है। तकलीफों के बीच कैसे धर्म हो सकता है। ऐसी शिकायतें करने वालो आप इस कथा से सबक सीख लेना।

## 83. सच बोलने का लाभ

एक बार दो चोर चोरी करने के लिए राजमहल में गये। रास्ते में राजा से भेंट हुई। राजा ने उनसे पूछा कि "कौन हो ?" चोरों ने जवाब दिया कि "हम लोग चोर हैं और राजा के यहाँ चोरी करने के लिए जा रहे हैं।"

इस प्रकार सच कहने का साहस देखकर राजा तो दंग रह गया। हकीकत में उन दोनोंने राजा के खजाने से हीरे की दो अंगूठियाँ चोरी की । हीरे तो तीन थे परंतु वे दो ही थे। अतः दो ही हीरे उठाये। दूसरे दिन खजाने से चोरी होने के समाचार राजा को मिले। उन्होंने प्रधान से पूछा कि क्या क्या चोरी हुआ है,उसका ब्यौरा दीजिए।"इस तरफ वे दोनों चोर पकड़ लिये गये। प्रधान ने कहा कि "राजन् ! तीन हीरे चोरी हुए हैं।"

राजा ने चोरों से पूछा तो चोरों ने कहा कि "हम दो ही होने के कारण हमने मात्र दो हीरे ही चुराये हैं। "राजा को चोरों की सत्यवादिता के प्रति पूरा विश्वास था। अतः राजा ने प्रधान को आड़े हाथों लिया। आखिरकार, प्रधान ने स्वीकार किया कि एक हीरा उसने खुद चोरी किया है।

## 84. अन्य का जीवन खराब न हो ऐसा आचरण करें।

एक राजा था। भीतर से वह नितांत निर्विकार था लेकिन सारा समय उसकी रानियाँ उसके पास रहती थीं और राजा उनके साथ विविध कीडाएँ करता रहता था।

राजा का ऐसा आचरण गाँव की एक सुशील स्त्री को पीड़ित कर रहा था। उसे इस बात की चिंता थी कि राजा का ऐसा आचार देखकर लोग क्या करेंगे ?

एक बार वह स्त्री राजा के पास गई और उसकी तरफ तिरस्कार से देखा। उसी वक्त उस स्त्री

के शरीर में दाह पैदा हो गया । रानियों ने उस स्त्री से कहा कि : "हमारे पवित्र राजा के प्रति तिरस्कारयुक्त दृष्टि से देखने का परिणाम तो देख लिया ना।"

राजा ने उस सुशील स्त्री से कहा; "मेरे लिये रखे स्नान जल को तुम अपने शरीर पर लगा दो। तुम्हारी दाहपीड़ा शांत हो जायेगी।"

सच में हुआ भी वैसा ही । बाद में राजा ने उससे पूछा :"अब मेरे निर्विकारत्व को लेकर तुम आश्वस्त हुई कि नही ?"

उस औरत ने कहा :"हाँ, अवश्य पर आपको ऐसा बाह्याचार करने का कोई अधिकार नही है। लोग तो वैसे भी बड़ों के बाह्याचार से ही प्रेरित होते हैं।"

राजा ने उस स्त्री की बात का स्वीकार कर लिया और अपना बाह्याचार भी निर्मल किया।

## 85. सिंकदर तो और अनेक जन्म लेंगे पर अरस्तु का क्या?

एक बार सिकंदर और उनके गुरु एरिस्टोटल (अरस्तु) सैर पर निकले । रास्ते में एक अनजान नदी आयी। दोनों के बीच नदी के जल की गहराई को लेकर विवाद चला। उस विवाद में सिकंदर नदी में कूद गया और नदी के उस पार पहुँच गया।

उसने वहाँ से गुरु से कहा कि :"आप भी नदी पार करके चले आइए। कोई खतरा नही है। "नदी पार कर लेने के पश्चात एरिस्टोटल (अरस्तु) ने सिकंदर से पूछा कि :"जिद में आकर तुम इस अनजान नदी में कूद तो पड़े लेकिन यदि कुछ हो जाता तो ?"

सिकंदर ने कहा,"यदि मैं मर जाता तो आप और दस सिकंदर पैदा कर लेते पर यदि नदी में पहले कूदने से आपको कुछ हो जाता तो मैं एरिस्टोटल (अरस्तु) जैसे अन्य गुरु को कभी भी पैदा कर नही पाता। अतः मैंने ऐसा किया।"

## 86. अधिक त्यागी कौन? साधु या संसारी?

अत्यंत भावपूर्वक नमन कर रहे राजा से किसी साधु ने पूछा कि :"हे राजन् ! आप मेरे समक्ष क्यों झुक झुककर नमन कर रहे हो ?"

राजा ने कहा,"आपके त्याग को देखकर मैं आपके त्याग की वंदना करता हूँ।"

संन्यासी ने कहा :"तब तो मुझे आपको नमन करना चाहिये क्योंकि मैं तो त्यागी हूँ लेकिन आप तो महात्यागी हो।" राजा ने इस बात का खुलासा चाहा तब संन्यासी ने कहा :"मैंने तो काम, क्रोध, विषयकषाय रूपी कूड़े (कचरे) का ही त्याग किया है, जबकि तुमने तो ईश्वरचिन्तन, विश्वमैत्री तथा करुणा आदि जवाहरात का भी त्याग कर दिया है।"

कूड़े (कचरे) के त्यागी से जवाहरात का त्यागी तो महात्यागी ही कहलायेगा न ?

## 87. अवगुणी से भी सीखा जा सकता हैं।

उस हकीम का नाम लुकमान था। उसका जीवन अगणित गुणों से युक्त था। यह देखकर किसी ने उससे पूछा कि "आपका इतना भारी विकास कैसे सम्भव हुआ ?"आपने किससे और कहाँ से यह सब सीखा।" लुकमान ने कहा :"लुच्चे,बदमाश,कामी और कंजूस से सीखा हूँ। उन लोगों के दोष देखकर मैं बहुत त्रस्त हो उठा था। लुच्चों का लुच्चापन, बदमाशों की बदमाशियाँ ,कामियों की कामदग्धता, क्रोधियों के क्रोधावेग और कृपणों की कृपणता देखकर मैंने अपने जीवन को उन सारे दोषों से मुक्त कर देने के लिए कमर कस ली और उनके खिलाफ जंग जारी किया। परिणाम स्वरूप मैंने गुणविकास की सिद्धि प्राप्त की।" गुणियों से तो हम गुण तो सीखेंगे ही परंतु अवगुणी भी हमारे लिए उपकारी हैं। वे हमें अनजाने ही प्रेरणा का दान करते हैं कि अवगुणों के वश होकर हमने अपने जीवन को तो बरबाद किया ही है पर आप उन अवगुणों से बचकर रहें।

## 88. हमारे पराजय का कारण विलास

भारत की प्रजा को अत्यंत बलशाली माना जाता था। अतः उसे पराजित करना मुश्किल था। ऐसी भारत की प्रजा को जब नादिरशाह ने अत्यंत सरलतापूर्वक हरा दिया तब उसे भी इस विजय से बहुत आश्चर्य हुआ था।

वह एकबार दिल्ली के पराजित बादशाह महमद के आतिथ्य का आनंद मना रहा था तब उसने कहा, "मुझे बहुत प्यास लगी है। पानी लाओ।"

दासियाँ जल लाने के लिए दौड़ गईं। सभी दासियाँ सोलह शृंगार से सज्जित, हीराजड़ित प्याले में सुगंधित जल लिये अंगभंगिमापूर्ण नृत्य करती हुई नादिरशाह के समक्ष रुमझुम करती हुई आईं। जिनमें से एक दासी नादिरशाह के हाथ में ग्लास रखने के लिए गई। यह सब देखकर परेशान नादिरशाह ने कहा :" मैं ऐसा पानी नही पीता।" और फौरन अपने निजी सेवक को बुलाया। वह मशक में पानी भरकर लाया।

नादिर ने अपने माथे पर धारण किये हुए लोहे के टोप में पानी भरकर पी लिया। नादिर ने कहा:" "अब मेरी समझ में आता है कि आप भारत के लोग क्यों हार गये ?" आपकी हार का कारण आपके जीवन में व्याप्त विलासी वातावरण ही है।"

## 89. कभी रूपया कमाने के लिए चार आने खोने भी पड़ते हैं!

एक युवा ने जिद करके अपने घर के लिए एक टी.वी. बसा लिया। रविवार के दिन टी.वी.पर आने वाले कामुकतापूर्ण चित्र देखकर वह अत्यंत आनंदविभोर हो उठता था पर एक दिन किसी साधु के सत्संग से प्रभावित होकर उसने खुद के द्वारा बसाये गये टी.वी. को हटा देने की बात अपने बडे-बुजुर्गों से की। बुजुर्गों ने उसकी बात का इन्कार किया। वह युवक अपने उपकारी गुरुदेव के पास

गया और कहा कि :"मेरे घर के बुजुर्ग टी.वी. हटाने के लिए राजी नही हैं। मैं मिकेनिक हूँ। आप यदि आज्ञा दें तो टी.वी. के मशीन में कुछ ऐसी गड़बड़ कर दूँ कि टी.वी. चले ही नही।" गुरुजी विचार करने लगे। क्या कहा जाये-कुछ समझ में नही आया लेकिन उनके मन में एक विचार स्फुरित हुआ कि :"रुपया कमाने के लिए कभी चार आने गँवाने भी पड़ते हैं।"

## 90. जैन दीक्षा का अजैनों पर प्रभाव!

दस हजार की आबादी वाले गाँव में एक धनिक की अतिसुंदर पुत्री दीक्षा ग्रहण कर रही थी। गाँव में पिता की प्रतिष्ठा और नाम बहुत ऊँचा था। अतः पुत्री के दीक्षा के अवसर पर हजारों की तादाद में अजैन उपस्थित थे। दीक्षा के अवसर की पूर्णाहूति के उपरांत सेठजी की ओर से सभी जैन-अजैनों को मिष्टभोजन कराने की घोषणा ध्वनिवर्द्धक यंत्र पर से हुई थी।

लेकिन जब कुमारिका के बेशकीमती वस्त्र उतर गये, आभूषण उतर गये, माथे के बाल भी उतर गये और साध्वी के भेष में उस कन्या ने स्नानादि करके मण्डप में प्रवेश किया तब अजैन लोगों के मुख से दर्दपूर्ण चीख निकल गई। जब इस कुमारिका के ऐसे भारी व्रतयुक्त दीक्षोपरांत जीवन के बारे में कठोर जानकारी मिली तब वे रो उठे थे।

दीक्षाविधि सम्पन्न हो गई। दस हजार लोगों के लिए खाना बना था लेकिन मात्र चार हजार लोगों ने भोजन ग्रहण किया था ! सेठ ने ऐसा होने की वजह जानना चाहा तो पता चला कि :"दीक्षा के कठोर जीवन को समझ लेने के बाद अजैन लोग मिष्टान्न खा सके ऐसी स्थिति में नहीं रहे थे। अतः बिना भोजन किये ही चले गये।

## 91. क्या अब बच्चे माँ-बाप को संस्कार देंगे?

मुम्बई के उपनगर में घटी हुई यह सत्यघटना है। एक दिन शिविरों में संस्कारित हुआ एक चौदह वर्षीय किशोर प्रातः वेला में पिताजी के चरणस्पर्श करने गया तब पिता ने घबराते हुए पुछा कि :"बेटे ! यह तुम क्या कर रहे हो ?"

बेटे ने कहा :"पिताजी , रविवारीय शिविरों में मुझे साधु –भगवंतो से यह संस्कार मिले हैं कि मुझे हमेशा माता-पिता के चरणों में वंदन करना चाहिए। अतः मैं आपके चरणस्पर्श करने आया हूँ।" पिता मन ही मन यह सोचने लगे कि :"मेरी ७५ वर्षीय वृद्ध माता अभी भी जीवित है। आज दिन पर्यंत मैंने उसके चरणस्पर्श नही किये हैं। तो मैं कैसे अपने पुत्र के नमस्कार-वंदन का अधिकारी हो सकता हूँ?"

पिता ने बेटे से कहा : बेटे ! तनिक रूक जाओ, मैं अभी आया। बाद में तुम मेरा चरण स्पर्श करना।" पिता वहाँ से उठकर बगलके कमरे में जाकर वृद्ध माता के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद मांगे और पुनः अपने कमरे में लौट आये। बेटे से कहा: "अब तुम रोज मेरे चरण स्पर्श करना क्योंकि मैंने आज तुम से सीखा है कि माता-पिता का चरणस्पर्श करना चाहिए।"

## 92. क्या होगा इस नयी पीढ़ी का?

एक परिवार में तीन वर्षीय बच्चा इन्जेक्शन की सिरिंज में पानी भरकर खेल रहा था। उस समय घर में एक विद्वान व्यक्ति ने उसके पिचकारी के खेल को देखकर कहा :" बच्चे ! मुझे कहो कि तुम बड़े होकर क्या बनोगे ?"

बच्चे ने कहा :"मैं बडा होकर डॉक्टर बनूँगा।

विद्वान ने पुछा :"डॉक्टर होकर तुम क्या करोगे ?"

बच्चे ने कहा :"इन्जेक्शन की सिरिंज में जहर भरूँगा और सबसे पहले मैं अपने माता-पिता को

उस इन्जेकशन से मार डालूँगा।"

यह सुनकर वह विद्वान तो दंग रह गया। वह मन ही मन बोल ऊठा कि "" इतनी कम अवस्था में माँ-बाप के प्रति इतनी नफरत !"

## 93. सब अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग बजाते हैं।

एक मालिक ने एक शेर पाला था। एक बार उस मालिक ने शेर का चित्र बनाया। उस चित्र में शेर की पीठ पर एक मनुष्य को सवार हुआ दिखाया था।

मालिक ने वह चित्र अपने पालतू शेर को दिखाते हुए कहा:"देखो ! मैंने तुम्हारा कितना सुंदर चित्र बनाया है। साथ ही तुम यह भी देखो कि तुम पर कैसे सवार हुआ है!"

शेर ने उत्तर दिया :"आपकी बात सही है क्योंकि यह चित्र मानव रचित है। यदि यह चित्र किसी शेर ने बनाया होता तो शेर ने मनुष्य को चौपाया दिखाया होता और शेर उस पर सवार हुआ है, ऐसा दिखाये बिना वह कभी न रहता।"

मलिक ! यह तो नियम है कि सब अपनी अपनी डफली अपना अपना राग बजाते हैं।"

शेर की यह बात कितनी यथार्थ है।

## 94. सत्यवादी कैसा होता हैं?

उस समय जगतचंद्रसूरिश्वरजी नामक एक जैनाचार्य हुए। उनका भीम नामक एक श्रावक था। वह सत्यवादी था। एक बार उसके घर पर म्लेच्छों ने डाका डाला। भीम को उठाकर वे अपनी छावनी में ले गये। पिता को मुक्त कराने के लिए पुत्रों ने म्लेच्छों को चार हजार टांक दिये। ये टांक असली है

या जाली- इस बात की जानकारी म्लेच्छों को नही थी।

वे जानते थे कि भीम सत्यवादी है। अतः वे उसके पास गये और दिये गये टांकों की असलियत के बारे में पूछा।"

हकीकत में ये टांक नकली थे। पुत्रों पर आने वाले संकट का तनिक भी विचार किये बिना भीम ने कह दिया कि:"मुझे मुक्त कराने के लिए मेरे बेटों द्वारा दिये गये ये टांक जाली हैं।"

भीम की सत्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर म्लेच्छों ने भीम को मुक्त कर दिया।

## 95. साधर्मिक भक्ति से तीर्थंकर हुए

धातकी खण्ड में ऐरवत क्षेत्र में क्षेमपुर नगर में विमलवाहन नामक एक राजा था। उसके शासनकाल के दौरान एक बार भयानक अकाल पड़ा तब उसने लम्बे समय तक नगर के साधर्मिकों को पकवान भोजन देकर उनका निर्वाह किया था। अतिउल्लसित भावपूर्वक की गई इस साधर्मिक भक्ति के कारण उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया था। बाद में उस राजा ने दीक्षा अंगीकार की और कालधर्म को प्राप्तकर देवलोक गमन कर लिया। वहाँ से आकर वर्तमान चौबीसी में संभवनाथ तीर्थंकर के नाम से अवतरित हुए।

जब उनका जन्म हुआ था तब उस नगर में भीषण अकाल चल रहा था पर उनके जन्म से उस नगर में चारों ओर से विपुल मात्रा में अनाज आया और सर्वत्र सुकाल हो गया। इसी लिए उनका नाम सम्भवनाथ रखा गया।

## 96. कैसी अद्‌भुत साधर्मिक भक्ति!

भरत चक्रवर्ती के वंशज दंडवीर्य नामक राजा को साधर्मिक भक्ति का अच्छा संस्कार बन गया था। वे हमेशा अपने घर आये हुए साधर्मिकों को भोजन कराकर ही अन्न ग्रहण करते थे। उनके इस व्रत की कसौटी करने के लिए देवराज इन्द्र के मन में विचार आया।

एक बार देवराज इन्द्र ने अपनी वैक्रिय लब्धि से लाखों साधर्मिकों को पैदा करके राजा दंडवीर्य के यहाँ भेजना शुरू किया। पहले दिन तो शाम ढल चुकी थी। साधर्मिक आते ही रहे और दंडवीर्य साधर्मिकों को भोजन कराता ही रहा। अभी कुछ साधर्मिकों को भोजन कराना शेष रह गया था। अतः राजा ने उस दिन अन्न ग्रहण नही किया। ऐसा लगातार सात दिन तक चलता रहा। राजा ने आठों दिन खडे रहकर लाखों साधर्मिकों की भोजन भक्ति की। अपनीं प्रतिज्ञानुसार उसने आठ –आठ दिन तक भोजन नही किया तो नही किया। आठों दिन उपवास किये।

आठवें दिन राजा की इस महान प्रतिज्ञा से प्रसन्न होकर देवेन्द्र इन्द्र ने दिव्य घनुष और दिव्य कुण्डल इत्यादि राजा को उपहार के रूप में दिये।

## 97. लोगों को अन्य बातों में कभी भी रस-रूचि होती नहीं हैं।

एक दिन अकबर ने वीरबल से कहा :"वीरबल ! मेरा ऐसा मानना है कि समस्त प्रजा मुझे बहुत चाहती है।" मैं जो भी आदेश करूँ उसके पालन केलिए प्रजा हमेशा तत्पर रहती है।"

वीरबल ने अकबर की इस बात का निपट इन्कार कर दिया। इसलिए वीरबल की इस बात की प्रतीति करने के लिए वीरबल के कहे अनुसार अकबर ने एक टोटका किया।

"एक बडे हौज में सब लोग एक-एक घड़ा दूध डालें।"- नगर में ऐसा ढिंढोरा पिटवाया। राजा ने

यह कार्य सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक पूर्ण कर देने का आदेश दिया था। रात भर नगर के लोगों की आवाजाही चलती रही। सुबह होते ही पूरा हौज भर तो गया लेकिन दूध से नही पानी से भर गया। बहुत सावधानीपूर्वक तलाश करवाने पर पता चला कि हौज में मात्र दो घडे ही दूध डाला गया है, शेष तो पानी ही है। लोगों ने तो पानी ही डाला है।

सबने मन ही मन ऐसा विचार किया था कि बादशाह अकबर को तो निठल्ले बैठ-बैठकर ऐसे ही काम दिखाई देते हैं। सारे लोग दूध के घडे डालेंगे और मैं यदि अकेला ही पानी से भरा घडा डाल दूंगा तो किसे पता चलने वाला है ? सबने ऐसा सोचकर पानी का घडा भर दिया था।

अकबर की यह कथा तो नितांत निष्क्रिय और प्रजा की बेईमान मानसिकता को व्यक्त करती है।

## 98. बिगड़ी बाजी को सुधार लेना सीखो।

एक व्यापारी का महाजनी का व्यवसाय था। वह जिसे भी पैसे ऋण पर देता था, उससे कहता था कि "हमारे राजा के मरने तक मुझे मेरे पैसे लौटा देना।"

कुछ समय के बाद राजा को खबर हुई। उसे व्यापारी की यह चेष्टा बिलकुल अच्छी नही लगी। उसे बहुत गुस्सा आया।

राजा ने व्यापारी को बुलाया। उसे अंदाज आ गया था कि अपनी बात नितांत अनुचित है। राजा की मौत की मर्यादा कभी भी रखी नही जा सकती परंतु यह तो बनिया था। उसकी बुद्धि का कोई अंदाजा नही लगा सकता।

राजा को नमस्कार करते हुए उसने कहा," राजन्! मैं कुछ गलत नही कर रहा। बहुत सोच-समझकर यह बात करता हूँ ,सुनिये !

"मैं मौत की बात रखता हूँ तब सब यही सोचते हैं कि "राजा जल्दी न मरे तो अच्छा,राजा का

आयुष्य और बढता रहे तो हमारे द्वारा लिये गये रुपये अभी लौटाने नही पड़ेंगे। राजन ! इस प्रकार तो मैं आपके दीर्घायुष्य की दुआएँ प्राप्त कर रहा हूँ। आप इस बात पर तो गौर कीजिए !" यह सुनकर राजा तो अति प्रसन्न हो गया और उस व्यापारी का उचित सम्मान किया।

## 99. क्या काल ने करवट बदली हैं?

वह था तो मात्र सात वर्षीय बालक। उसका जन्म अति धर्मिष्ठ परिवार में हुआ था। साधुओं की संगति के कारण उसने काफी कुछ सीख लिया था।

एकदा उसके स्कूल ने प्रवास का आयोजन किया। जिसमें विदेश यात्रा के लिए चौदह दिन के प्रवास का आयोजन हुआ। इस बालक ने अपने माता-पिता को इस प्रवास में उसे नही भेजने के लिए बहुत समझाया। उसने कहा कि :"भगवान की पूजा किये बिना मुझे जरा भी अच्छा नही लगता है। विदेश यात्रा के दरमियान मैं कैसे पूजा कर पाऊँगा ?"

नये जमाने के वातावरण से प्रभावित माता-पिता ने उसकी एक नही सुनी और उसे प्रवास पर भेज दिया। सात दिन के बाद उसने प्रवास के दौरान अपने माता-पिता के नाम पत्र लिखा। इस पत्र के अंत में उसने दो पंक्तियाँ लिखी :

"मुझे लगता है कि पाप करने के लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ है। काका महाराज को मैं अपना मुँह कैसे दिखा पाऊँगा ? मैं इस बात को लेकर अभी से चिन्तित हूँ। परमात्मा की पूजा के बिना मेरा हर दिन बेचैनी से गुजर रहा है।"

क्या हवा सानुकूल रूप से बदल गई हो ऐसा नही लगता ?

## 100. धर्माचार्य की धर्मरक्षा

एकदा किसी भयानक आग में समस्त भरूच जलकर खाक हो गया । सद्भाग्य से मुनिसुव्रतस्वामी भगवान की एक प्रतिमा बच गई । अनेक बरस बीत गये पर वहाँ जैनों ने वहाँ अपना बसेरा नही किया था । ऐसे में सिंहसूरिश्वरजी नामक आचार्य भरूच पधारे । उन्होंने वहाँ स्वयं जाकर वहाँ बसे हुए ब्राह्मणों से भेंट की । वे अष्टांग निमित्त के ज्ञाता थे । अपने चातुर्यबल से उन्होंने ब्राह्मणों से पांच हजार रूपये प्राप्त किये । वे जैनाचार्य होने के कारण उनकी योजनानुसार सारे ब्राह्मणों ने यथाशक्ति जिनमंदिर के निर्माण के लिए यह धनराशि एकत्र करके दी थी ।

इस धनराशि से सूरिजी ने मुनिसुव्रतस्वामी भगवान की प्रतिमावाले मंदिर का नवोद्धार करवाया था ।

## 101. नीतिधर्म की कैसी जबरदस्त ताकत

एकदा गुजरात में भयानक कोटि का अकाल शुरू हुआ । गुजरात का नाथ व्याकुल हो उठा । उसने ज्योतिषियों को बुलाया । ज्योतिषियों ने अकाल के भयानक ग्रहों की स्थिति को समझाकर राजा को और बेचैन कर दिया पर अंततः उन्होंने कहा :"एक उपाय है । आपके नगर में एक सम्पूर्ण नीतिवान जैन श्रावक रहता है । यदि वह आकाश के नीचे खडे होकर आकाश से कहे कि" हे बरसात ! तुम वर्षण करो।" तो धारासार बारिश होगी।" यह सुनकर राजा खुद उस श्रावक के घर गया और बरसात लाने के लिए विनती की ।

महादयालु श्रावक ने अपने हाथ में तराजु लिया । तराजु हाथ में ऊपर उठाकर बोलाः" हे वरुणदेव ! यदि मैंने इस तराजू से कभी अनीति की हो तो यह अकाल हमेशा चलता रहे पर यदि मैंने अनीति की ही न हो तो अभी बारहों मेघ बरस पड़े ।"और हकीकत में मूसलाधार बारिश हुई । कैसी है नीतिपूर्ण छोटे से धर्म की प्रचण्ड ताकत !

## 102. पारसमणि सेठ हठीसिंह

अहमदाबाद में जो हठीसिंह की वाडी है वही यह हठीसिंह सेठ !

सेठ की ख्याति पारसमणि स्वरूपा थी। कई लोग उन्हें पारसमणि कहते थे। एक दिन गाँव की अनपढ औरत ने यह सुना। उसने सोचा कि :"यदि सेठ पारसमणि हैं तो उन्हें लोहे का टूकडा छुआने से वह अवश्य सोना हो जाना चाहिये। ला,जरा कसौटी करूँ यदि सच होगा तो मेरी गरीबी खत्म हो जायेगी।"

वह औरत सेठ के घर पहुँची। सेठ के लिए वह दुर्दिन था। पत्नी ने उस औरत की सारी बात सुनकर भीतर बैठे हुए सेठ जी को बताई।

सेठ भी सोचने लगे। फिर भी उस गरीब औरत को अपने पास बुलाकर अपनी पत्नी के सारे जेवर उसे उपहार के रूप में दे दिये। वह औरत तो आनंदविभोर होकर चल दी।सेठ सचमुच पारसमणि सिद्ध हुए।

## 103. साधु से जैसे तैसे काम हो ही नहीं सकते।

वस्तुपाल के समय में शत्रुंजय तीर्थ के देवद्रव्य की व्यवस्था में बड़ी गड़बड़ होने के समाचार फैल गये। तत्कालीन आचार्य को भी यह खबर हुई। देवद्रव्य में गड़बड़ तो बडा अशुभ माना जाता है। ऐसी शास्त्र सम्मत बात को जानकर उन्होंने अपने विद्वान शिष्य को पालिताणा भेजा। फैली हुई इस गड़बड़ी को ठीक करने तथा कारोबार को शुद्ध करने के लिए साधु ने वहाँ स्थिरता की। कमनसीबी से वहाँ उनका जीवन भ्रष्ट हुआ।

उक्त घटना से आचार्य भगवंत ने बोध लिया कि ऐसे कामों में लाभ नजर आता हो तथापि साधु को कभी उसमें जोड़ना नही चाहिए।

## 104. रात्रिभोज त्याग की महिमा

उसे सब लोग "राव" कहकर बुलाते थे। एकदा वह एक जैन साधु के पास गया। वहाँ उसने रात्रिभोजन की महिमा का श्रवण किया। फौरन उसने प्रतिज्ञा की कि आज से रात्रिभोजन बंद और यदि करना पड़ा तो दूसरे दिन उपवास करूँगा।

दूसरे दिन राव नौकरी पर गया। करीब चार बजे उसने अपने सेठ से छुट्टी मांगी परंतु सेठ ने छुट्टी देने से इन्कार कर दिया। अतः राव को उस दिन रात्रिभोजन करना पड़ा। अतः दूसरे दिन उपवास का पच्चक्खाण लेकर वह नौकरी पर गया। आज उसने सेठ से घर जल्दी जाने की छुट्टी नही मांगी। अतः सेठ ने कारण जानना चाहा।

राव ने कहा :"आज तो मैंने कल किये गये रात्रिभोजन का उपवास है। अतः घर जल्दी पहुँचना जरूरी नही है।" यह सुनकर सेठ ने उसे रोज जाने की इजाजत दी और साथ ही साथ तनख्वाह भी बढा दी। रात्रिभोजन त्याग की कितनी सुंदर महिमा !

## 105. कैसे परदुःखभंजक सेठ!

उस सेठ के गृहमंदिर में रत्न की एक प्रतिमा थी। एक व्यक्ति द्वारा सट्टे में एक लाख रूपये गँवा बैठने के कारण इस प्रतिमा की चोरी करने के लिए इस मंदिर में गया। अपने साथ झोली भी रखे हुए थे। सेठ भी पूजा करके बाहर निकलने वाले ही थे। कोई देख नही रहा ऐसा मानकर उसने रत्न की प्रतिमा को अपनी झोली में रख दिया। सेठ ने यह देखा। सेठ ने भैया से कहा कि :"वह आदमी जब बाहर आये तब उसे अपनी रसोई में भोजन करने के लिए लेते आना।"

भैया ने तदानुसार किया। सेठ ने उसे पांच पक्वान्न का भोजन कराया। भोजन कराते समय सेठ ने कहा कि "भाई ! आपने जो काम किया है वह बहुत गलत काम किया है।"

सेठ की यह बात सुनते ही वह काँप ऊठा। उसने सच बात बताते हुए कहा कि :"मैंने कल सट्टे में एक लाख रूपये गँवा दिये हैं। कल वलण चुकाने केलिए मैंने लाख रूपयों की इस प्रतिमा की चोरी की है। मुझे क्षमा कीजिए। "

सेठ ने कहा कि :"तुमने मुझे पहले कहा होता तो ? तुम्हें इस प्रतिमा की चोरी करने का विचार नही करना पडता।" .....और सेठ ने उसे उसी वक्त एक लाख रूपये दे दिये। वह आदमी वहाँ से सिसकियाँ लेते हुए रवाना हुआ।

## 106. अबजपति! बेमौत मरा!

वह अमरिकी अबजपति था।

एक दिन की बात है। अपनी सम्पत्ति का अंदाज निकालने के लिए वह अपनी फौलादी दीवारोंवाली केबिन की तीजौरी में गया। उसके द्वार अपनेआप बंद हो जाते थे। भूल से चाभी बाहर छूट गई।

दो-तीन घण्टे तक काम कर लेने के बाद वह जैसे ही बाहर निकलने जा रहा था कि उसे पता चला कि दरवाजा बंद है और चाभी बाहर छूट गई है ! दरवाजा खोलने के लिए उसने आवाजें लगाई पर बाहर कोई नहीं था। और तीन घण्टे व्यतीत हो गये। वह धनिक तो हताश हो गया। उसे बहुत प्यास लगी। उसे अपनी मौत नजर आ रही थी।

मारे प्यास के आकुल-व्याकुल होते हुए उसने एक कागज और कलम उठाकर लिखा।"यदि अभी मुझे कोई एक गिलास पानी पिलाये तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति उसे बक्षिस कर दूँ।" और ...कुछ ही देर में उस अबजपति की देह तडफडाती हुई हमेशा के लिए शांत हो गई।

(यदि पुण्य है तो सब सलामत ! पर सम्पत्ति के बलबूते पर कभी नहीं जिया जा सकता ! यह तो पुनर्विवाह करनेवाली नारी सदृश है।)

# 107. सिकंदर की आँखे खुल गई।

सम्राट सिकंदर ने तुर्कस्तान पर आक्रमण किया। उग्रतापूर्वक आगे बढ रही उसकी सेना समुद्री जल की भाँति बढने लगी। तुर्कस्तान का बादशाह समझ गया था कि उससे टक्कर लेकर देश को सर्वनाश की दिशा में ले जाने के अतिरिक्त और कुछ हासिल होनेवाला नही है। अत: दूरदर्शिता बरतते हुए सम्राट सिकंदर के पास अपना दूत भेजा और शरण स्वीकृति की घोषणा की।

रक्तविहिन उस विजय से सम्राट आफ्रीन आफ्रीन कर गया। तुर्कस्तान के बादशाह ने सिकंदर का भव्य नगर प्रवेश कराया।

जबर्दस्त रिसाले के साथ आये सिकंदर ने तुर्कस्तान के लोगों की सलामी ली,तोपों की सलामी के साथ बादशाह सिकंदर ने महल में प्रवेश किया।

भोजन का समय हुआ। देश के सम्मानित लोगों के को भी तुर्क के बादशाह ने आमंत्रित किया था। सारे अतिथि आ गये। यजमान बादशाह ने खाना परोसने के लिए आदेश दिया। एक के बाद एक खाना परोसनेवाले आने लगे। किसी के पात्र में मोती थे,तो किसी के पात्र में हीरे..। चम्मच से हीरे ,मोती लेकर सम्राट की और अन्य सब की थाली में परोसने लगे।

राजा सिकंदर ने आँखें तरेरीं। भौंहें तन गईं ! यह कैसा अपमान ! उसने तुर्क के बादशाह की ओर देखा। चकोर बादशाह की समझ में सारी बात आ गई !

उन्होंने करबद्ध होकर कहा,"नामदार! जिसकी आपको भूख है ,वही भोजन सामग्री आपको परोसी गई है। मैं इतना तो समझ ही सकता हूँ कि सामान्य भोजन के लिए सम्राट इतनी दूर कभी आयेंगे ही नहीं।

उनके देश में अन्न का कहाँ अभाव है ? इसी लिए मैंने अन्न के बदले तृष्णा का भोजन परोसवाकर आपका सम्मान किया।"

सिकंदर तो भौंचक रह गया। बादशाह को राज्य वापस लौटाकर स्वदेश लौट गया।

# 108. मैं कल की चिंता नहीं करता

सुधीर के पिताजी का आकस्मिक निधन हो जाने के कारण उनके पुत्र सुधीर ने एक वृद्ध मुनीमजी से पूँजी का अंदाज निकालने के लिए कहा। दो दिन बाद मुनीमजी ने कहा ,"सुधीरभाई ! तीन पीढी तक कम न हो,इतना सबकुछ आपके पिताजी छोड गये हैं।"

यह वाक्य सुनते ही सुधीर को आघात पहुँचा ! हाय ! तो फिर मेरी चौथी पीढी की संतति का क्या होगा ? क्या वह भुखों मरेगी !

इस चिन्ता के कारण सुधीर का शरीर सूखता चला। माता ने अनेक मिन्नतें रखी। एक दिन किसी संन्यासी ने सलाह दी कि "प्रतिदिन एक शेर बाजरे का आटा गरीब को देकर ही अन्न-जल ग्रहण किया जाये तो ठीक हो जायेगा।"

आटा-दान शुरू हुआ। एक दिन कोई मिला नही। आखिरकार दोपहर बारह बजे कोई भिखारी दौडते हुए वहाँ से गुजरा। आकुलचित्त सुधीर ने उसे रोककर आटा देने का प्रयास किया।

पर....उस भिखारी ने कहा ,"सेठजी ! ऐसे तो मैं लूंगा नही। आप रूकिये। मैं पत्नी से पूछकर तुरंत लौटता हूँ।"

घर पहुँचकर पत्नी से पूछा कि "कितने दिन चले उतना अनाज घर में है ?"

पत्नी ने जवाब दिया कि "आज का दिन चल जाये उतना। "बाद में सुधीर के पास जाकर भिखारी ने जवाब दिया कि सेठजी ! आज का दिन निभ जाये उतना पर्याप्त अनाज हमारे पास होने के कारण हमें आटा नही चाहिए।"

"अरे ! पर कल काम आयेगा। कल क्या करोगे ? लो ले जाओ।" एक ही साँस में सुधीर बोल गया। मुस्कुराते हुए भिखारी ने कहा,"साहब ! कल की चिंता करता ही कौन है?"

यह बात सुनते ही मानो सुधीर को मानों तमाचा जड दिया गया हो। "हाय ?और मैं तो चौथी पीढी की चिंता करता जा रहा हूँ।"

और तदनंतर सुधीर का स्वास्थ्य ठीक हो गया।

# 109. धन के पाप से दो कवियों की मौत

(ऐसी दंतकथा कर्णोपकर्ण जानने को मिली है कि रघुवंश इत्यादि विश्वख्यात काव्यों के रचयिता महाकवि कालिदास की एक गणिका ने सम्पत्ति के लोभवश निर्दयतापूर्वक हत्या की थी। शास्त्रकार परमर्षियों ने धन के पुरुषार्थ को अधम ऐसे काम पुरुषार्थ से भी अधिक अधम-अधमाधम प्रणित किया है ,उसका साक्षात्कार इस दंतकथा से होगा।)

धारानगरी के राजा भोजकी विद्वतसभा के आभूषण समान यह महाकवि थे। उनका नाम कालिदास था।

उनके जीवनकाल में ही उनकी ख्याति दिग्दिगंत तक पहुँच गई थी। कविराज की प्रत्येक काव्यरचना की अविलम्ब अनेक प्रतियाँ तैयार होती थी। साहित्यप्रेमी मुँहमाँगा दाम चुकाकर उन प्रतियों को क्रय कर लेते थे।

महाकवि का विशाल प्रशंसक समूह था। महाकवि की काव्यछटा को आत्मसात् करने हेतु नवयुवा कविगण उनके काव्य का मनन करने के लिए घोर परिश्रम करता था।

उस समय लंका की राजसभा में भारत के कालिदास कहे जा रहे कुमारदास नामक कविराज थे। वे कालिदास के परम भक्त थे। किसी चित्रकार से उन्होंने अपने आराध्य कवि कालिदास का चित्र प्राप्त किया था। यह चित्र उनका प्रेरणास्रोत था। कालिदास की समस्त रचनाओं को उन्होंने आत्मसात् कर लिया था। यही कारण है कि कुमारदास की काव्यमंजुषा में भी कालिदास का प्रभाव दिखाई देता था।

एक बार कुमारदास ने "जानकीहरण" नामक काव्य की रचना की। उसकी एक प्रति कालिदास के पास पहुँचाई। काव्य रचना को पढकर प्रसन्नतावश कालिदास का हृदय नर्तन करने लगा। वे मन ही मन कह उठे," यह काव्य पढकर ऐसा लगता है जैसे मैंने स्वयं उसका प्रणयन किया हो।"

इसके बाद कालिदास को अपने परम भक्त कुमारदास से मिलने की इच्छा हुई। मान-सम्मान नहीं पाने के संकल्प के साथ वे छद्मवेष में निकल पडे। काफी दिनों के बाद वे लंका की राजधानी में

पहुँच गये। उस समय रात्रि के बारह बज रहे थे। किसी घर के द्वार खुले देखकर महाकवि उस घर में प्रविष्ठ हुए। वह घर राजगणिका का निवास था। अपना ग्राहक समझकर वह प्रत्यक्ष हुई,पर जहाँ महाकवि ने "बहन"" शब्द से सम्बोधित किया और सुबह कवि कुमारदास से मिलने की इच्छा व्यक्त की कि वह गणिका को समझते देर नही लगी कि यहाँ कोई अतिथि के रूप में यहाँ रात्रि निवास हेतु आया है।

गणिका ने महाकवि को विश्रान्ति प्राप्ति के लिए एक कमरा दे दिया।

दो घण्टे की नींद लेकर महाकवि निद्रा मुक्त हुए। उस समय बगल के कमरे में कोई बोल रहा हो,ऐसा लगने पर वे कमरे के दरवाजे के पास गये। उन्होंने उस गणिका को यह कहते हुए सुना। वह बोल रही थी :"कमले कमलोत्पत्तिं श्रूयते न च दृश्यते।" कमल में कमल पैदा उगता है ऐसा सुनने में आता है पर ऐसा कहीं दीखता नही है।"

महाकवि ने अनुमान किया कि राजसभा में राजा ने पादपूर्ति के लिए यह पहेली दी है। उसकी पादपूर्ति करनेवाले के लिए बडा पुरस्कार घोषित किया है। यह स्त्री उसके लिए सतत रतजगा करके परिश्रम कर तो रही है पर अभी तक पादपूर्ति कर नही पायी है ! यह तो मेरा काम है ! क्षणमात्र में पादपूर्ति कर दूँ।

महाकवि ने द्वारा द्वार पर दस्तक दिये जाने पर गणिका ने द्वार खोला। महाकवि ने कहा :"बहन ! मैं तुम्हें पादपूर्ति करने में सहायता कर देता हूँ। "बाले ! तव मुखांभोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।"- हे बाले ! तुम्हारे इस सुंदर मुख रूपी कमल में देखो ना दो नेत्र रूपी दो कमल उदियमान दीख ही रहे हैं।"

आगंतुक की यह कवित्वशक्ति को देखकर गणिका तो दंग रह गई। महाकवि अपने कक्ष में वापस लौट गये। और वे गहरी नींद सो गये।

अब इस तरफ गणिका की नींद उचट गई है। उसे एक ही विचार परेशान किये जा रहा है कि ,"यह आगंतुक मेरे पुरस्कार का साझीदार हो गया या उसका पूरा हकदार हो गया तो ? क्योंकि वह सुबह वेला में कवि कुमारदास से मिलने के लिए राजसभा में आनेवाला ही है।"

और...एकाएक उसके मन में कालिदास को खत्म कर देने का अधमातिअधम विचार आ गया।

दूसरे ही क्षण वह उठी और अबला से प्रबला होकर हाथ में धारदार छुरा लिया और द्वार खोलकर एक ही क्षण में मीठी नींद में सोये महाकवि का गला काट दिया। तुरंत शिर और धड अलग हो गये ! गणिका ने रात ही रात अपने ही घर में गहरा गड्ढा खोदकर महाकवि की देह के छोटे छोटे टुकडों को एक के उपर एक रखकर गड्ढे में भर दिया। अंत में माथा भी रख दिया गया और धरती को समतल बना दिया।

धारानगरी के महाकवि को मौत के घाट उतारनेवाली वह हतभागी रात्रि अस्तंगत्वा हुई।

स्नानादि करके सोलह श्रृंगार सजकर गणिका राजसभा में गई। राजकाज सम्पन्न होने के बाद समस्यापूर्ति की बात चली। कोई भी विद्वान पण्डित जब यह पादपूर्ति नही कर पाये तब गणिका ने खडे होकर मुस्कुराते हुए प्रसन्नवदना होकर राजा से कहा :"बाले ! तव मुखांभोजे कथमिन्दीवरद्वयम् ।"- हे राजन् ! अपने मुखरूपी कमल में देखिये ना , नयन रूपी दो कमल कैसे उदियमान दीख रहे हैं !"

गणिका की ऐसी अद्‌भुत पूर्ति सुनकर लंकानरेश आनंदविभोर हो गये। गले की शोभा समान अमूल्य नौ लडियोंवाला हार गणिका के गले में डालने के लिए तनिक आगे बढे।

स्वस्थान पर विराजित कवि कुमारदास का अंतर्मन आशंकित हो गया। उसका मन कह रहा था कि इस पादपूर्ति में साहित्य का जो असर है वह तो महाकवि कालिदास का प्रभाव है,पर , इस समय महाकवि कालिदास यहाँ कैसे हो सकते हैं ? पर एक बात तो तय है कि यह रचना गणिका की तो है ही नही। एकाएक कुमारदास ने खडे होकर लंका नरेश से कहा कि :"राजन् ! सबूर ! बक्षिस देने की जल्दबाजी न करें। मैं इस राजगणिका से कुछ पूछना चाहता हूँ।"

इतना कहकर उन्होंने राजगणिका की ओर रूख किया। पापिन राजगणिका अपने कृत पापवश काँपने लगी। उसमें भी कुमारदास ने सख्तीभरी आवाज में यह बताने के लिए कहा कि इस पूर्ति का असली रचयिता कौन है ? यह सुनते ही गणिका एकदम भयाक्रांत हो गई। अंततः उसने विगत मध्यरात्रि में आगंतुक के आगमन से लेकर सारी हकीकत बता दी !

कुमारदास उससे नफरत करने लगे। उसे धिक्कारपूर्वक कहने लगे कि "ओ गणिका ! जिसने तुम पर उपकार किया उसी की हत्या तुमने धन के लोभवश कर दी। हाय ! खैर !...अब मुझे तुम उस हतभागी कवि के दर्शन कराओ। मैं उसका मुखदर्शन करना चाहता हूँ।"

गणिका ने घर जाकर गड्ढा खोदकर दिखाया तो कुमारदास कटा हुआ मस्तक देखकर चीख उठा,"ओ महाकवि कालिदास ! दूसरे ही क्षण वह बेहोश हो गया।

दूसरे दिन लंका में महाकवि की विराट स्मशानयात्रा निकली। लाखों लोग बेजार आँसु बहा रहे थे और बिलख बिलखकर कल्पांत कर रहे थे। महाकवि उससे मिलने के लिए ही आये होंगे और उनकी ऐसी क्रूर हत्या हो गई,इस विचार से कुमारदास गहरा आघात अनुभव कर रहे थे। अब उनके लिए जीवन जहर बन गया था। जलती हुई चिता की आग उनके लिए असह्य हो गई थी।एकाएक वे ताल स्वर में बोले :"महाकवि ! आप मुझे मिलने के लिए आये पर मिल नही पाये। कोई बात नही,अब मैं आप से स्वर्ग में मिलने के लिए आ रहा हूँ।"

इतना कहकर कुमारदास ने दौडकर चिता में छलांग लगा दी।

भारत और लंका के दो विख्यात महाकवि एक ही चिता में एकसाथ खाक हो गये। एक मरकर और दूसरा जीते जी चिता में कूदकर...।

## 110. धन से डरते दीनदयाल

किसी नदी के तट पर कुछ समय के लिए नाव को लंगर कर उसमें बैठा प्रवासी किनारे पर सैर करने के लिए नीचे उतरा। पता नहीं क्या हुआ ,एकाएक वह किनारे से दौडकर आया और नाविक से कहा,:"नाव जल्दी से चलाओ ,मुझे डर लग रहा है।" और नाविक ने नाव को नदी की धारा में छोडा।

कुछ देर बाद नाविक ने पूछा :"क्या आपने किनारे पर किसी भूत-प्रेत को देखा कि एकदम दौड आये।" प्रवासी ने कहा :"ना ! भूत-प्रेत से भी ज्यादा भयानक चीज वहाँ थी। वहाँ धन से भरी हुई थैली पडी हुई थी। मुझे विचार आया कि उसे ले लेने के लिए मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगी तो ? ऐसे भय वश मैं वहाँ से भाग लिया। रामकृष्ण परमहंस के प्रखर शिष्य नाग महाशय के पिता दीनदयाल ही यह प्रवासी थे।

धन से कैसा डर !

# 111. धनः समृद्ध बनाये पर संतोषी भी बनाये?

धरती पर एक गाँव था। भौगोलिक मर्यादाओं के कारण उस गाँव के सारे लोग अत्यंत गरीब थे।

एक दिन आकाश मार्ग से शंकर पार्वती का विमान जा रहा था। अति दरिद्र इस गाँव की ओर पार्वती का दृष्टिपात होते ही उसने शंकर से प्रार्थना की कि वे उस सारे गाँव को धनवान बना दे।

शंकर ने कहा कि "धनवान तो बना सकूंगा पर क्या उससे ये गाँववाले संतोषी हो सकेंगे ?"

पार्वती ने कहा :" बेशक ! यदि सब को पर्याप्त धन दिया जाये तो अधिक धन पाने की वृत्ति खत्म हो जायेगी। संतोष स्वयमेव आ जायेगा।"

शंकर ने अपनी माया के प्रभाव से रातोंरात गाँव के बाहर बहुत बडी सोने की खान बना दी। दूसरे दिन सभी गाँववाले खबर मिलते ही दौड पडे। जितना लिया जा सकता था,उतना सोना बटोर लिया। सारे गाँववाले एक ही दिन में करोडाधिपति हो गये।

रात हुई। घरों में बातचीत होने लगी। घर की स्त्रियाँ अपने पति आदि से कहने लगी कि यह अवश्य किसी देव की माया है। उसने कमाल कर दी है परंतु वह देव अवश्य मूर्ख होने चाहिए। उन्होंने सारे गाँव को धनिक बना दिया।

अतः अब धनिकत्व का कोई मजा नही रहा। यदि उसने हमारे जैसे कुछ लोगों को धनिक बनाया होता तो शेष दरिद्रों को देख हम आनंद प्राप्त करते और अपने धन से हमें संतोषानुभूति भी होती परंतु अब जब सभी बराबर के धनिक हुए हैं तो अब अन्य से अधिक धन प्राप्त करने का संतोष भी होता।

अब जब सारे बराबर बराबर के धनिक हुए हैं तो अब अन्य से अधिक धन पाने का असंतोष तो बना ही रहेगा। अतः प्राप्त धन की आनंदानुभूति नही हो सकेगी।"

शंकर ने पार्वती से कहा,"सुनो! इन धनिक हुए लोगों के बारे में मैंने आप से कहा था कि धनवान होने से संतोषी होना प्रायः असम्भव है।"

# 112. अमर बनने चले सिकंदर

एकबार सिकंदर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था तब उसके गुरु अरस्तू(एरिस्टोटल) ने बताया कि हिन्दुस्तान एक अजिबोगरीब देश है। वहाँ महान संत हैं। उनके पास अद्‌भुत शक्तियाँ और लब्धियाँ हैं। उपरांत इस देश में मेरे सुनने के अनुसार अमर होने के लिए कोई पोखरी है,यदि उसका जल पीया जाये तो जीव अमर हो जाता है। बादशाह सिकंदर ! तुम इस अमर पोखरी को किसी भी कीमत पर खोज निकालना।"

प्रणाम करके गुरु की बात का स्वीकार करके सिकंदर ने बिदाई ली। बहुत कम समय में वह हिन्दुस्तान पहुँच गया। उसने अमर पोखरी की तलाश करवाने के लिए अपने चुनीदा, एकदम हुशियार और बुद्धिमान घुडसवारों को भेज दिया। दो महिने बाद एक घुडसवार अमर पोखरी की तलाश करने में सफलता हासिल कर बादशाह के पास गया। उसने कहा कि,"पश्चिम दिशा में स्थित अमुक नगर से दोसौ कोस वायव्य दिशा में जाने से वहाँ अमुक चिह्नोंवाली एक पोखरी है.वहाँ के स्थानीय लोग उसे अमर पोखरी कहते तो हैं परंतु उसके जल के रहस्य के बारे में उन्हें कोई खबर नही है। उस तालाब में असंख्य मगरमच्छ रह रहे होने के कारण तथा उसके आसपास भयंकर बन में लाखों जहरिले साँपों की बस्ती के कारण वहाँ कोई आता-जाता नही है।"

बादशाह ने घुडसवार को प्रसन्न होकर बडा पुरस्कार दिया।

बहादुर बादशाह अपने प्रिय घोडे पर सवार होकर अकेला ही सूचित दिशा में सरपट निकल गया।

अत्यंत सावधानी के साथ वह साँपों के जंगल से गुजर गया। उसे प्राप्त संकेतानुसार अमर पोखरी मिल गई। सिकंदर अतिआनंदित हो गया क्योंकि उसे अमर होना था। अब तो अमर हो जाने के क्षण निकट आ गये थे। बादशाह की मान्यता थी कि "यदि मौत से मुक्त हो जाऊँ तो इस दुनिया में जिस स्वर्ग का अवतरण हुआ है,जो बेशुमार भोगसामग्री इकट्‌ठा की है,उसे बस मैं हमेशा के लिए भोगता ही रहूँ।"

और...आनंदातिरेक के कारण झूम उठे सिकंदर जैसे ही पोखरी से पानी लेने के लिए झूककर बडे सूखे पत्ते से बनाये दोने में पानी भरने जाता है कि बीस-पच्चीस मगर एकाएक किनारे पर आ गये।

अनपेक्षित आई उस आपदा से स्तब्ध हुआ बादशाह ने किनारे पर एक कदम पीछे हटकर मगरों की ओर देखा । विशाल लम्बाई ! आराम से गिना जा सके ऐसा मांस रहित नितांत अस्थिपंजर ! अति कमजोर,अति दुबले ! एकदम बुढे जर्जरित देहवाले,मौत की प्रतीक्षा कर रहे हों ऐसे सारे, उनमें एक भी अपवाद रूप नही !

मगरों की अत्यंत दयनीय दशा के विषय में बादशाह कुछ विचार करे उससे पूर्व ही एक बडा मगरमच्छ अपने अति अप्रिय ऐसी कर्कश आवाज में बादशाह से कहने लगा,"ओ,हतभागी मानव ! भूल से भी यह पानी पीना नही । यह जल पीने से "अमर" हुआ जाता है । ऐसी बात तुम्हें किसी अधूरे ज्ञानी ने कही है । इसी लिए तुम यहाँ त्वरा से दौडे चले आये हो ऐसा लगता है । तुम पानी पीने के लिए अधीर हुए हो ,ऐसा लगता है । पर ओ मानव ! यह जल हमने पीया है । हम तो मगर हैं ,जलचर हैं ! इसी में हमारा जन्म ,इसी में हमारा जीवन !

"ना ...पर इसमें हमारी मौत नितांत असम्भव हो गई है । क्योंकि इस जल को पीनेवाले जीव की मृत्यु कभी नही हो सकती ।"

"बहुत अच्छी बात है । मुझे कभी भी मरना नही है । आप मुझे पानी पीने से क्यों रोक रहे हो?" उतावली में एक ही साँस में बादशाह ने पूछ लिया ।

मगर ने कहा,,ओ अज्ञानी ! एकबार तुम मेरी पूरी बात सुन लो । तत्पश्चात् तुम्हें कोई सवाल करना नही पडेगा ।"

बात कुछ ऐसी है कि हमने तो जन्म लेते ही यह जल पीया । बाद में हम बडे हुए । बालक से किशोर हुए । किशोर से युवान हुए । युवान से वृद्ध हुए । वृद्ध से अतिवृद्ध हुए । अब ! अब क्या ! इस अतिवृद्धावस्था के बाद की स्थिति मरण है, वह सम्भव नही है । इसलिए हम लाखों बरसों से अतिवृद्धावस्था को जी रहे हैं । अतिवृद्ध बेचारा कैसा हो सकता है ! एकदम शक्तिहीन-दूबला,कमजोर,पस्त शरीरवाला:हतोत्साह,अस्थिर आत्मविश्वासवाला,आनंद से वंचित,रोगिष्ट ! और दुर्बलता से भारी ! "तनिक रुककर,साँस बैठते ही पुनः वह मगर बोलने लगा,"हाय ! ऐसी भयानक-अरुचिकर हुई वृद्धावस्था का क्या किया जाये ! इसका समाधान तो मौत द्वारा ही सम्भव है ।

जीर्ण वस्त्र को छोडना ही अनिवार्य है। हंस(जीव) को नया सुंदर वस्त्र धारण करने के लिए परलोक की यात्रा की दिशा में मंगल -चरण धरना ही अनिवार्य है।"बाद में मगर श्रमित होकर पुनः हाँफने लगा , "भाग्यहीन मानव !"विराम लेकर मगर ने कहा,

"तुम एक काम करो।,तुम अमर ही होना चाहते हो ना तो इस अमर पोखरी के जल का पान करने का आग्रह तुम्हें छोडना होगा। हमारी तरह तुम वृद्धावस्था में प्रवेश करो और तुम "अमर" हो जाओ,उससे कहीं अधिक बेहतर तो मौत है। अतः तुम अब यहाँ से ईशान कोने (दिशा) में चारसौ किलोमीटर की दूरी पर कुछ खास संकेतोंवाले स्थान के पास यौवन नामक एक बन है। तुम वहाँ जाओ। उस बन के फल तुम खाओगे तो तुम्हारी यह थिरकती हुई जवानी अमर हो जायेगी। इतना होने के बाद यह अमरपटा तुम्हें सदाबहार जवानी के साथ प्राप्त होगा। अर्थात् जवानी के साथ, इसकी संप्राप्ति के साथ तुम जवानी के सारे भोग और सुख हमेशा के लिए मनाते रहो। बस आनंद ही आनंद। मात्र आनंद। हमारे जैसी अतिजरावस्था का अनुभव तो तुम स्वप्न में भी नही करोगे। बस, तुम अब जाओ। हम तो कभी वहाँ गये नहीं हैं और जा भी नही सकेंगे पर,हमने जो सुना है,वही कह रहे हैं।"

बादशाह को तो इस बात का प्रत्येक अक्षर सही प्रतीत हुआ। बुढे मगर की बात सौ फीसदी सत्य थी। तुरंत बादशाह ने घोडे को एडी दबायी,पवन गति से वह चल पडा। शाम होते होते तो वह यौवन बन में पहुँच गया।

पर यह क्या ? गहन बन के मध्य में आये मैदान में हजारों युवा और युवतियाँ एक दूसरे को जान से मारने की लडाई प्रतिक्षण-अविरत चौबीसो घण्टे लडते रहते थे। खुँखार जंग चल रही थी। प्रत्येक के अंग पर करोडों रूपयों के आभूषण थे। हर व्यक्ति अन्य का सबकुछ लूटना-झपटना चाहता था। अतः हर व्यक्ति अन्य को जी-जान से खत्म कर देने के लिए तलवार आदि शस्त्रों की ताकत का उपयोग करता था। बेशक,गरदन पर पूरी ताकत के साथ तलवार का वार होता था परंतु किसी का गला कटने की बात तो दूर रही बल्कि छोटी सी खरोंच तक नही आती थी।

चौबीसो घण्टे –अविरत रूप से चैन से एक भी साँस लिये या क्षण मात्र के लिए आराम किये बिना चल रही इस युवा जंग को देखकर बादशाह तो दंग रह गया। उसने हौले से एक युवा को बडी

मुश्किल से अलग किया। दूर ले जाकर उससे इस परिस्थिति की वजह पूछी।

उस युवा ने बताया कि,"भाई ! हम सबने किसी की प्रेरणा वश अमर हो जाने के लिए इस यौवन बन का फल खा लिया है,अब हम हमारी सदाबहार जवानी के अमरत्व के साथ अमर हो गये हैं। यह बात एकदम निश्चित है कि अब हम कभी मरेंगे ही नही।

अब,यदि हमें करोडों,अबजो,परार्धो वर्ष तक जीना निश्चित ही है –और वह भी थिरकती जवानी के साथ - तो हमें कितने धन-वैभव की जरूरत पडेगी। हमें अबजो रुपयों की,अरे ! खर्व,निखर्व या परार्ध से भी संतुष्ट नहीं होगा। हाँ यदि जीवन छोटा होता ! सौ,दोसौ या पांचसौ बरसों का ही हमारा आयुष्य होता तो हमें इतने सारे धन की प्राप्ति की तृष्णा नही होती परंतु जब हम अमर हो गये हैं तब तो हमें कितना सारा धन चाहिए? इसीलिए हम एक दूसरे का धन,जेवर,स्त्री आदि सबकुछ पा लेने के लिए लड रहे हैं पर अफसोस ! कोई मरता ही नही और कोई मरे ऐसा है भी नही। इसलिए कुछ हाथ लगता ही नही और हमारी धनतृष्णा हमारा पीछा नही छोड रही। हम तो बुरी तरह से थक गये हैं। जवानी में मदहोश जीवन जिया नही जा रहा और संत्रास से मुक्ति दिलानेवाली मौत अब आ नहीं सकेगी। यदि मौत हो तभी जीवन जीने का आनंद उठाया जा सकता है। भाई ! किसीने हमें जाने-अनजाने ही आपको यह यौवन –फल खाने की सीख दे दी हो ऐसा लगता है। यह परामर्शकदाता निश्चय ही आपका शत्रु होना चाहिए पर आपने मुझ से जो पूछ लिया यह बहुत अच्छा किया। मेहरबानी करके भूल से भी यह फल खाने की गलती नही करना।"

सिकंदर को सबकुछ अच्छी तरह से समझ में आ गया। "मौत है तभी जीवन में संतोष का आनंद है।"-इस बात पर सिकंदर को पूरा भरोसा बैठ गया।

उसने कहा-जीवन में मीठाश देनेवाली मौत को कडुआ कैसे कह सकते हैं? उसे तो मीठा ही कहा जाना चाहिए ना ? गौतमबुद्ध ने "सर्व क्षणिक" कहकर पदार्थ मात्र पर आसक्त होने जाने पर मजेदार ब्रेक लगाया है।

देह नाशवंत ! पदार्थ नाशवंत ! या तो माली को मरना पडे या गुलाब को बिदा लेनी ही है। वस्तु

मात्र पर एक पट्टी लगी हुई है ,जिस पर लिखा हुआ है- "मैं नाशवंत हूँ।"

हाय ! कहा जाता है कि उस अश्वत्थामा के घोर पापों की सजा के रूप में उसकी मौत छीन ली गई है। वह याचक के रूप में हमेशा सर्वत्र चक्कर काटता रहता है ,चक्कर काटता रहेगा। कभी मरेगा नही । अति रहस्यपूर्ण बात इस रूपक में कही गई है।

## 113. लखलूट वैभव- एक पैसा

विश्व की जमीं को रौंदता हुआ सिकंदर एक दिन ग्रीस नामक देश में जा पहुँचा। वहाँ उत्तम संत के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त डायोजीनिअस से मिला। डायोजीनिअस सदैव दिगंबरावस्था में रहते थे। उन दोनों के बीच हुआ सम्वाद इस प्रकार है।-

सिकंदर : "अरे ओ ! तुम कौन हो ?"

डायोजीनिअस: "इससे तुम्हें क्या मतलब ? तू पहले परे हट जा और मुझ पर जो सूर्य किरणें आ रही थी,उन्हें आने दे। और सबूर ! मेरे दो-तीन सवालों के जवाब भी देता चल। मेरा पहला सवाल है- तुम युद्ध बहुत करते हो,खून की नदियाँ बहा रहे हो.यह सब कर लेने के बाद तुम क्या करोगे ?" सिकंदर :"बाद में मैं सम्राट पद धारण करूँगा। बस,बाद मैं चैन से अपना जीवन व्यतीत करूँगा।" डायोजीनिअस :"तो फिर मेरी तरह आज से तुम चैन की जिंदगी बसर करना शुरू कर दो भला।"

तेरा जो साम्राज्य है,उसकी कीमत एक पैसे से ज्यादा नही है। यह बात जब तुम्हारी समझ में आयेगी तब जब तू कही जानलेवा प्यास से एकदम व्याकुल हो रहा होगा। ऐसे समय में यदि कोई तुम से यह पूछे कि, "तुम्हें यदि कोई एक गिलास पानी दे तो उसे तुम क्या बक्षिश दोगे ?" तब तुम बेखटके कहोगे कि "मेरा समस्त साम्राज्य "। एक पैसे मूल्य के पानी के गिलास के बदले में सारा साम्राज्य ! ऐसा कहकर डायोजीनिअस खुलकर हँसने लगे।

सिकंदर गहरे विचार में खो गया।

## 114. हाय, धनलालसा की क्रूरता!

एक छोटा सा नगर था। वहाँ कोई बीमार होता नही था क्योंकि सारे स्त्री-पुरूष अपने हाथों काम करते थे। सख्त परिश्रम करते थे। उपरांत वे बहुत खानदान होने के कारण शीलवान भी थे।

उस गाँव में दवाखाना शुरू करने के लिए कुछ खानगी व्यापारी दो-चार बार आये,पर लोगों ने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि यहाँ किसीको कभी कोई रोग होता ही नहीं। तुम्हारा दवाखाना कैसे चलेगा ? व्यापारी भी उस्ताद थे। उन्होनें दवाखाना खोलने का विचार मुलतवी कर होटेल का प्रारंभ किया। उसमें चाय,फरसान आदि बनता था। ये चीजें धूम बीकने लगी।

घर घर बीमारी का दौर शुरू हो गया। हर घर में बीमारी वश चारपाई बीछी रहती थी।

बाद में उस व्यापारी ने दवाखाने की बात उन लोगों के पास चलायी। अब तो उसका होना अनिवार्य सा हो गया था। अतः लोगों ने स्वीकृति दी। दवाखाना चलने लगा।

होटेल और दवाखाना दोनों के पूरक होकर धूम कमाई करने लगे।

धूर्त व्यापारी अपनी मूँछ पर ताव देने लगा।

## 115. तब आकाश में चंदा उग चुका था।

(नानाभाई जोबलिया)

बेलीफ ने हस्ताक्षर करने का कागज सुखा मोची के हाथ में रखा तब सूर्यरथ मध्याह्न में आ गया था ....

सुखा भगत ने अभी अभी ही अपनी छोटी सी दुकान खोली थी...जूते सीने के औजार-रापी,विंगडो,सूआ तैयार किये और सेलडी पर से,रात्रि के समय चूहों द्वारा लींडियाँ (विष्टा) हटाकर

साफ-सफाई की थी। जूते भीगोने की कुण्डी में थोडा सा पानी डाला था और मरम्मत के लिए आये हुए एकाध-दो जोडी जुते,चप्पल पानी में डुबोकर सुई तैयार की थी। ऐसे में सुबह के सूरज ने सुखा की हाटडी के किंवाड के पास बिछे हुए तौलिये जैसी धूप में ,सरकारी आदमी की छाया दीखाई दी...।

"आप ही सुखा भवान मोची ?"

"हाँ ,बापजी ! मैं खुद...."

आपका यही व्यवसाय है ? बेलीफ की आत्मा मन ही मन दु:ख अनुभव किया।

हाँ भाई ! यही मेरा कामकाज है,यही मेरी छोटी सी दुकान।" और यही मेरे काम-काज की जगह।" जूते मरम्मत करने की जगह में सीलने के लिए आये तलुए निकले हुए,मुँह से फटे-टूटे हुए जुतों के ढेर को दिखाते हुए सुखा भगत ने कहा :"यही है मेरी माया-पूँजी,बापा !"

लिजिए भगत ! इसमें दस्तखत करो या अंगुठा लगाइए। खाली लिफाफे में से कोर्ट का कागज निकालकर बेलीफ ने भगत के सामने फैलाया।

गरीब और विवश ऐसे सुखा मोची के तन में एक सिहरन दौड गई।"किस बात का खत है,भाई?"

"कोरट का।"(कोर्ट का)

"क्या कोरट ?" सुखा दो अंगुल ऊँचा उठ गया !

"आपके खिलाफ मुकदमा दाखिल किया गया है।"

किसने दाखिल किया है मुकदमा ? मुकदमे का नाम पडते ही सुखा मोची मानों गिरनार की चोटी पर से औंधा गिर गया हो.....

"क्या तुमने तुम्हारे गाँव के व्यापारी से रुपये लिये थे ?"

"हाँ बापा ! दो वर्ष पूर्व बीस रुपये लिये थे। प्रतिमाह एक रूपया सूद के रूप में जमा कराता हूँ।"

"बस,उसीने मुकदमा दाखिल करवाया है।.....आपको बीस दिन बाद कोर्ट में हाजिर होना है।"

सुखा ने गर्म उसाँस छोडी : "हकु सेठ ने यह क्या कर दिया ?"

बेलीफ से ली स्याही की डिबिया में सुखा भगत ने दाहिने हाथ के अंगुठे को डूबोया...कंधे से

लेकर उंगली के पोरों तक काँप रहे इस गरीब आदमी के हाथ को मुश्किल से स्थिर रखकर बेलीफ ने अंगुठे की छाप लगवाई...।

बेलीफ के जाते ही सुखा मोची ने टूटे-फूटे पट्टियोंवाली छोटी सी दुकान को बंद कर,माथे पर काली टोपी रखकर,तार-तार हुई कुरती के बचे-खूचे एकाध-दो बटन काँपते हुए हाथ से बंद किये और हकु सेठ के आंगन में पाँव धरा।

"आइए भगत !" झूले पर झूल रहे दो-चार तकिये रखकर,पान चबाते हुए हकु सेठ ने आने के लिए कहा। सेठ के रंगीन फर्शबंदी कमरे के बिगड जाने के भय वश सुखा भगत ने कमरे की किनार पर तनकर जगह ली।:"आपने तो भारी कर दी,सेठ।"

बादामी रंग की कढाईवाली टोपी पर सोने की मुद्रिका वाली उंगलियों को फेरते हुए सेठ ने भौंहों से सुखा को देखा और खुदं ने मौके पर घाव किया था,उसका निशान सुखा के चेहरे पर देखा-तलाशा-सुखा का पासा कट चुका था...!

"किस चीज की भारी हुई। सुखा ?" हकु सेठ का फूलगुलाबी दिखनेवाला चेहरा एकाएक पाषाणी हो गया :"रुपये जमा कराता नही है ?"

प्रतिमाह एक रुपया व्याज तो जमा कराता हूँ बापा !"

रुपल्ली और ठीकरा...हकु सेठ ने झूले को पेंग मारा...

अरे,सेठ ! मेरे लिये तो रुपया गाडी के पहिये जैसा है। दो दिन तक गाँव के जुतों की मरम्मत करता हूँ तब एक रुपया पाता हूँ...।

"सब का अपना अपना भाग्य !"सेठ खडे हुए। सुखा के चेहरे को फिर एकबार देखा :क्या सुखा मूल बात पर आ भी रहा है ?

"हकु सेठ मेरे घर चलिये।"

"रुपये लेने के लिए ?"

ना भई ना ! रुपये कैसे ? घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं है,ऐसे में रुपये कहाँ से ....? पर-"

और सेठ के चेहरे पर निरांत ने जगह बना ली। सुखा अब ठिकाने पर आ रहा था। जिसके लिए मुकदमा लडने का प्रपंच किया था वही चीज अब हाथ लगने का समय आ चुका था।

मेरे घर एक दूधारु गाय है,हकु सेठ ! एक वक्त में वह आठ शेर (चार लीटर) दूध देती है। ले जाइए,मेरी इज्जत भी अकबंद रहेगी और आपका कर्ज भी अदा हो जायेगा.....।"

"हं ...!"सेठ मन ही मन गणित बिठाने में जुड गये और जिस प्रकार बिल्ली दूध को तकती है ,वैसे ही सुखा के चेहरे को तकते रहे : "क्या मुझे उपर कुछ देना होगा भगत ?"

ना बापजी ना ! देना क्या है ? आप मुकदमा वापस ले लीजिए...।"

"पर गाय की कीमत ?"

"ना सेठजी ! गाय तो माँ है,उसका मोलतोल नहीं होता। छोटौ सी बछिया थी तब से उसे पालपोषकर बडा किया है।"...मैंने भी कहाँ खरीदी है ?"

वाह ! अब तुमने व्यावहारिक बात कही है ! सेठ हरषाये :

अब तुम्हारा पंथ और भक्ति वाजिब हुई...वैसे तो मुझे भी खबर है कि तुम पैसे लिये बिना ही ऋण अदा करोगे..." और सेठ ने मोजडी पहन ली :"चल गाय को आगे बढा दे...मुझे तो जो मिला वह सोना बराबर है।"

रसोई की चौखट पर हाथ रखकर खडी व्रजकोर सिठानी के हृदय में कम्पकम्पी शुरू हुई। उसके होठ कांपे और अंतर की गहराई से आक्रंद जगा कि :अरे छोडो,व्यापारी जीव...छोडो !"

"भगवान ने हमें चारों हाथ दिया है तब गरीब के बच्चों के मुख से मात्र बीस रूपयों के लिए दूध नहीं छीना जा सकता। सेठ ! पर सिठानी के बोल अपने आंगन में ही शांत हो गये। सेठ तो सुखा के घर जाकर गाय को निहार रहे थे....

आज से चालीस वर्ष पूर्व,ज्यादा नही तो दो सौ रुपये मिल सके ऐसी सुंदर-सलोनी गाय हकु सेठ के आंगन में मात्र बीस रुपयों में आ रही थी...!

गाय अपने आंगन से चली जानेवाली है ऐसे संकेत से सुखा मोची के बच्चे मानो अपनी सगी

जनेता मर गई हो,ऐसे सिसक सिसककर रो रहे थे...सुखा की घरवाली अपने मुँह में धोती का पींड ठूंसकर घर में दौड गई...गाय किसी भी सूरत में सुखा का आंगन छोडने के लिए राजी नही थी ...!

"सुखाभगत गाय देने की क्या यही रीत है ?" "क्यों सेठ ?"

"क्यों क्या ? यह क्लेश चल रहा है और गाय एक कदम भी बढा नही रही..."

"सेठ ! स्वामीनारायण भगवान की कण्ठी पर हाथ रखकर सुखा ने आर्द्र स्वरों में कहा :"ऐसा न कहें,सेठ ! और गाय को हल्का सा धक्का देकर कहा, चलो माताजी ! मेरा और तुम्हारा लेन-देन खत्म हुआ...मेरे घर से तुम्हें सेठ के गर जाना है ।,बाप !"

और सुखा के इन शब्दों के साथ गाय समझदार हो गई । पलभर के लिए चारोंओर देखती रही । फिर फटाक से मुहल्ले से बाहर निकलकर मालिक के पीछे पीछे चल दी...सुखा भगत ने गाय को हकु सेठ के घर बांधकर जैसे ही चलने के लिए पैर उठाया कि गाय ने सेठ का सारा अंगना काँप उठे ऐसे रँभाने लगी...."अररर ! आपने यह क्या कर दिया ? सिठानी ने कजिया करते हुए कहा:"गाय का रँभाना सुना?"

"सुना "। सेठ सिठानीजी की ओर मुडे :"उसे नारियल की सीठी और बिनौले दिखा..सुखे को फौरन भूल जायेगी । "थरथराते हुए हृदय के साथ सिठानी ने गाय को गुड और बिनौले दिखाये पर गाय ने उसकी ओर देखा तक नही ।..सिठानी ने ताजा ताजा रजका (मेथी के प्रकार की घाँस) मंगवाया पर सुंघा तक नही...पानी तक नही पीया । मानों गाय सेठ से कह रही थी:"मैं मर जाऊँ तो भले ,अन्यथा तुम मुझे खरीद सको ? और वह भी बीस रुपयों में ?"

हकु सेठ गाय को देखते रहे । दिनभर पानी भी नही पीया....!

शाम को मीठे दूध के साथ चपाती(थेपला) खाते समय सेठ ने सिठानी से पूछा कि "क्यों तुम कुछ बोल नही रही ?"

"क्या बोलूँ ?"सिठानी ने कटाक्ष किया :"मैं पिंजरापोल की ट्रस्टी थोडे ही हूँ कि गाय को बचाऊँ?" "क्या तुम मुझ पर व्यंग्य कस रही हो ? पिंजरापोल के ट्रस्टी ऐसे सेठ ,चकरा गये ।

"गाय मरेगी तो मैं ही नही सारा जगत खरीखोटी सुनायेगा.... !

सेठ चूप हो गये। शाम का खाना खाने के बाद आज उन्होंने डकार भी नही ली.सेठ मुहल्ले में चले गये। गाय उसे रिसभरी नजर से देख रही थी...बछडा भी भूख से व्याकुल होकर रंभा रहा था...!

सेठ की आत्मा जागृत हुई। मोजडी पहन ली और सुखा मोची की दहलीज पर जाकर सुखा को आवाज दी। ..डरता-घबडाता हुआ सुखा बाहर दरवाजे पर आया।

"क्या हुआ सेठ ?"गाय ने दूहने नही दिया क्या?"

मुझे नही दूहना सुखा ! तुम गाय वापस ले जाओ...बस बिना किसी दलील या पूछताछ के मेरे आगे चल।" और सुखा गाय को घर ले गया। सेठ पीछे पीछे चले। सुखा के खूंटे के पास रखी बालदी में रखा पानी एक ही बार में पी गई। सुखा के बच्चे गाय के वापस लौट आने की खुशी में उसके गले पर लटकने-झूमने लगे। बछिया भी गाय का दूग्धपान करने लगी।

"सुखा ! जब पैसे मिले तब दे जाना...अन्यथा मुझे नही लेना..."कहकर सेठ अपने घर वापस लौटे...तब आकाश में चंदा उग चुका था।

## 116. कांचन देख मुनिवर चलित होते हैं।

गुरु मच्छंदरनाथ को कहीं से सोने की अंगुठी मिली। उसका मन उसमें लुब्ध हुआ। अंगुठी अपनी थैली में सरका ली।

अब वह जहाँ जाये वहाँ,अंगुठी चोरी न हो जाये, इस लिए शिष्य गोरखनाथ से एक ही सवाल करता था,"बेटे यहाँ किसी प्रकार का भय तो नही है ना ?"

गोरखनाथ को इस सवाल का भेद नहीं मिला पर एक दिन गुरु शौच के लिए बाहर गये तब शिष्य ने थैली को ठीक से जाँचा। वह सारी बात समझ गये। उन्होंने उस अंगुठी को तालाब में फेंक दिया।

गुरु वापस लौटे । उन्हें चेले के इस खेल की भनक तक नही हुई । वह तो यह समझकर आश्वस्त रहे कि थैली तो सलामत है । दूसरे दिन वे जिस धर्मशाला में उतरे वहाँ गुरु ने वही सवाल किया, "बेटा,यहाँ कोई भय तो नही है ना ?"

गोरखनाथ ने कहा,"गुरुदेव ! उस भय को तो कल तालाब में डूबो दिया । अब आप बस मस्तराम होकर भजन गाते रहो ।" थैली में जाँच करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ ने सारी घटना की समझ पा ली थी ।

शिष्य ने उन्हें सन्मार्ग पर चढाया एतदर्थ उसका बहुत बहुत उपकार मनाने लगे ।

## 117. हाय, धन पाने के लिए नाक-कान कटवाने दिये।

सेठ का नाम लक्ष्मीचंद ।

बेटा लालचंद ।

जाति से वणिक । अतः बहुत बुद्धिमान ।

गाँव का नाम वसंतपुराराजा विलासप्रिय था । प्रजा के कल्याण के प्रति लापरवाह था । अतः चोरी,लूटपाट दिनप्रतिदिन बढने लगे ।

मध्यरात्रि वेला में पिता ने लाला (लालचंद) से कहा,बेटा ! अब वक्त आ गया है कि हमें अपना लाखों का धन सुरक्षित कर लेना चाहिए,अन्यथा कभी भी लूट लिये जायेंगे । अब राजा के भरोसे पर बैठे नही रह सकते । आज अभी हम स्मशान में जाकर गहरा गड्ढा खोदकर सारा धन उसमें दबा आते हैं ।" बेटे के सम्मत होते ही सारी अमूल्य वस्तुओं की गठरी बनाकर बाप-बेटा स्मशान की और बढने लगे ।

किसी चोर ने उन्हें देख लिया । उसने पता लगा लिया । जिस जगह पर गड्ढा खोदने का निर्णय किया था,उससे पचास कदम की दूरी पर चोर जाकर चूपचाप सो गया और जो कुछ बात हो उसे सुनने

के लिए चौकन्ना हो गया।

गड्ढा खोदकर सारा धन उसमें डाला। उसी समय पिता लक्ष्मीचंद के मन में एक विचार कौंध गया। उसने लाला से कहा,"लाला ! जरा यहाँ वहाँ देख तो ले कि कोई आदमी कहीं छीपा तो नही है।"

लाला ने चक्कर लगाया.उसे वह चोर सोया हुआ दिखाई दिया। पर उसकी बजती हुई नाक की आवाज सुनकर पिता के पास जाकर उसने कहा कि,"एक आदमी जमीन पर सीधा सोया हुआ है। वह नाक बजाते हुए गहरी नींद सो रहा है। अतः हमें चिंता करने की जरूरत नही है।"

पर लक्ष्मीचंद भी पहुँचा हुआ खुरांट आदमी था। लाला से कहा,"तुम्हारी बात शायद सही हो फिर भी तसल्ली करने के लिएतुम उसे जोर जोर से सात-आठ लातें मारकर आ। यदि वह जरा भी हिले डूले नही तो समझना कि वह गहरी नींद सोया हुआ है या फिर कोई मृतःदेह पडी है।"

लाला ने पिता की इच्छा पूर्ण की। जोर जोर से लातें मारी।

चोर ने लातें खा ली। उसका मन कह रहा था कि "यदि इतना दुःख सह लिया तो सारा माल हाथ में आ जायेगा।"

लाला ने पिता से सारी बातें करके निर्भय हो जाने के लिए कहा पर अभी भी पिता के मन में शंका बनी हुई थी। अतः उन्होंने झोली से छूरी निकालकर लाला को देते हुए कहा कि उस आदमी की नाक और कान काट दो जिससे मन निःशंक और निश्चिंत हो जाये"

लाला ने पिता की इच्छानुसार किया। चोर तो लहूलुहान हो गया। वह बहुत पहुँचा हुआ निकला। अफरात धन को हज्म कर जाने के लिए उसने कानकट्टा होना पसंद किया।

लाला ने पिता को सारी बात कही फिरभी पिता ने कहा,"बेटा ! अब मुझे कोई डर या शंका नही है फिरभी मेरे मन के संतोष के खातिर उस शव की नाक काट दे।"

लाला ने उस बात का अमल किया। उस चोर ने भी बहुत सहा। उसके कान और नाक से खूब खून बहा। इतना होने से पिता लक्ष्मीचंद के मन में कोई शंका रही नही। कब्र में धन गाडकर अच्छी तरह से गड्ढे को भर दिया। रात्रि के चार बजे वे घर पहुँचे।

इस तरफ वह चोर तुरंत ऊठा.गठरी माथे पर चढाकर घर ले गया।

दूसरे दिन पिता लक्ष्मीचंद ने तलाश करवाई तो गठरी गायब थी। उन्हें गहरा सदमा पहुँचा।

राजा से शिकायत की। नाक-कान कटे आदमी को पकडने में देर कितनी लगेगी भला !

राजा ने उसे कहा,"धन की गठरी सेठ को लौटा दो। चोर ने कहा,"इसमें मेरे नाक-कान गये हैं। सेठ वह वापस लौटाये तो धन फौरन लौटा दूँ।" सेठ बेचारा अब करे तो क्या ?

## 118. कंजूस बुढ़िया

बुढिया की छोटी बेटी का विवाह कराना बाकी था। वह भी काफी बडी हो गई थी। बुढिया के मन में ऐसा भय था कि यदि बिटिया की शादी करा दी जायेगी तो काफी धन खर्च हो जायेगा। शादी के बाद गौना,जियाणा(शादी के बाद बच्चे के जन्मावसर पर ,बच्चा, बेटी तथा जमाई आदि को दिया जानेवाला नेग), बारबार जमाई के आते-जाते रहने से होनेवाला खर्च -जैसे कि मेवा-मिठाईवाला घी से लथपथ भोजन आदि कराने से होनेवाला खर्च आदि।

इन खर्चों पर विचार करते हुए बुढिया की नींद उचट हो जाती थी पर आखिरकार सारे लोगों की नुक्ताचिनी के कारणवश बेटी की शादी करवा दी। यथासम्भव मितव्ययिता के साथ पैसा बचा लिया पर जमाई तो बारबार आता रहता था।

बुढिया को अपने जामाता का बारबार आना अच्छा नही लगता था,क्योंकि उसके बारबार आनेजाने से बहुत खर्च हो जाता था। उसने एक युक्ति की।

एक दिन बुढिया अपने जामाता के घर गई। बात ही बात में जमाई से बडा झगडा मोल लिया।

सबने मिलकर बुढिया से अपना सम्बंध तोड दिया।

बुढिया ने तो जैसा चाहा था वैसा हो गया।

अब बुढिया आराम से अकेली अपने घर में रहने लगी पर वक्त तो अपना काम करता ही है ना !

बुढिया अनेक छोटी बडी बीमारियों की चपेट में आने लगी। कभी ...कभी तो बुढिया मानो जाने की तैयारियाँ कर देती थी।

अतः पडोसियों ने बुढिया को बहुत समझाया कि वह अपनी बिटिया और दामाद को कुछ दिन के लिए अपने घर बुलाये। इसके लिए सबसे पहले उनसे वह अपने सम्बंध सुधार ले।

न चाहते हुए भी बुढिया को ऐसा करना पडा।

एक दिन पूरे दौर-दमाम के साथ बेटी और दामाद घर आये। रोटी खिलाने की इच्छा होते हुए भी लपसी बनाना शुरू किया। उसमें घी बहुत कम छोडा था पर सबने मिलकर घी से भरी वाढी (बरतन) उँडेल दी। बुढिया तो यह सब देखकर मन ही मन दुःखी होने लगी।

जमाई सारा घी खा न जाये ,खुद ही खा ले,ऐसे आशय के साथ वह अपने जमाई के साथ एक ही थाली में भोजन करने के लिए बैठी। लपसी के साथ घी अपनी तरफ आ जाये,इसलिए उसने लपसी में एक लकीर खींच दी,जिससे घी उसकी ओर बहने लगा।

पर उस दामाद को सारी बात समझ में आ गई थी। उसने भी कोई कच्ची गोटियाँ नहीं खेली थी। इसलिए उसने भी अपनी तरफ घी बहाने के लिए लपसी में एक लकीर खींच दी।

बुढिया से यह सहा नही गया। उसे जलन होने लगी। अब उसे थाली में रही लपसी को इकट्ठा कर लिया और स्वयं बडे बडे कौर भरकर खाने लगी।

उसकी चाल जमाई की समझ में आ गई ,उसने बडा हाथ मारना शुरू किया।

अब तो जितना जिसके हाथ में उतना उसके साथ वाला न्याय निर्मित हुआ।

एक तरफ बुढिया ने बडे-बडे कौर भरना शुरू कर दिया तो दूसरी तरफ जमाई ने।

वहाँ जमा सारे लोग यह विरल दृश्य देखने लगे और हँस-हँसकर लोटपोट होने लगे।

दामाद काफी लपसी और घी खा गया। इससे बुढिया को गहरा दुःख हुआ। वह रात भर सो नही पायी और उसी उद्वेग में मर गई।

# 119. अरबों रूपयों की सम्पत्ति का मोल कितना?

ईरान का बादशाह : हारुन अल रशीद।

अफरात सम्पत्ति का मालिक : इस लिए वह अत्यंत अभिमानी था।

एकबार एक औलिया-अबु शकीक बादशाह के महल में पधारे।

बादशाह ने बहुत सुंदर ढंग से उनका स्वागत-सत्कार किया। भोजनादि कार्य सम्पन्न होने के अनंतर अबु शकीक बादशाह से सम्पत्ति के नशे में चूर ऐसे बादशाह ने पूछा कि "मेरी सम्पत्ति का मूल्य कितना ?"

ओलिया ने कहा-"पहले मेरे सवाल का जवाब दो कि कभी आप जंगल में सैर करने के लिए गये हों और राह से गूमराह हो गये। आपको जोरों की प्यास लगी है। बिना पानी के आप आकुल-व्याकुल होने लगे हैं। ऐसे में कोई वनवासी आपको एक गिलास पानी पिलाये तो आप उसे बक्षिस के रूप में क्या देंगे ?"

फौरन बादशाह ने कहा : "मैं अपना आधा राज्य दे दूँ !""

उपरांत औलिये ने आगे पूछा कि "यदि कभी आप जानलेवा बीमारी में फंस जाओ और असह्य वेदना वश आप असह्य चीखें मार रहे हों,ऐसे में कोई बैद्य आपको एक पुडिया भरकर दवाई देकर आपकी वेदना को शांत करके पुनर्स्वास्थ्य प्रदान करे तो आप उसे बक्षिस में क्या देंगे ?"

बादशाह ने फौरन कहा :"मैं आधा राज्य दे दूँ।"

औलिया अबु शकीक ने कहा , "तो आप बतायें कि आपकी समग्र सम्पत्ति का कितना मोल होगा?

एक गिलास पानी + दवाई की एक पुडिया।"

बेचारा बादशाह ! औलिये की बात सुनकर निरुत्तर हो गया।

# 120. अति धनवान कार्नेगी बेमौत मरा

अमरिका का कार्नेगी अपने समय का सबसे अमीर आदमी माना जाता था। कहा जाता है कि एक जमाने में उसके पास छियानवे करोड डॉलर की पूँजी थी।

वह इस सम्पत्ति के प्रति बहुत आसक्त था। उससे भी ज्यादा उसे विश्व के श्रेष्ठ धनिक होने का अभिमान था।

पर,एकबार पता चला कि भारत के हैद्राबाद स्टेट के निजाम के पास उससे भी ज्यादा सम्पत्ति होने की सम्भावना है। अतः उसने अपने सचिव को उसकी सम्पत्ति का अंदाजा पाने के लिए हैद्राबाद भेजा।

उसका विचार ऐसा था कि जितनी ज्यादा सम्पत्ति निकले-उससे भी अधिक अर्जित कर ली जाये और स्वयं को दूसरे नम्बर से बचा लेना है।

सचिव तो हैद्राबाद आकर निजाम के खजानची से मिला। खजानची ने कहा,"हमारे बादशाह के पास अनगिनत सम्पत्ति है। उसकी गणना करना असम्भव है। हीरा,माणिक आदि जवाहिरात नंगों में नही टोकरे भरने से आंके जाते हैं। उपरांत कोई जानकार एक चीज का मूल्य एक करोड रुपया गिनाता है तो अन्य व्यापारी दसकरोड का मूल्य लगाता है। अतः इस दशा में मूल्यांकन(अंदाज) लगाना सम्भव नही है।"

सेक्रेटरी ने कार्नेगी से यह बात कही। यह सुनकर बहुत व्यग्र हो गया। उसने पुनः दो बार सेक्रेटरी को हैद्राबाद भेजा पर वही निराशाजनक उत्तर मिला।

ऐसा होने से कार्नेगी के चित्त को गहरा सदमा पहुँचा। वह सतत प्रलाप करता रहा कि "कौन ज्यादा अमीर ? मैं या निजाम ?"

इस प्रलाप की अवस्था में कार्नेगी मौत के हवाले हो गया।

हाय,पैसा ! जीवन में शान्ति नही और मरण में समाधि नही।

# 121. साध्वीजी छिपकली हुई।

एक साध्वीजी।

आप अत्यंत विदुषी थीं। अनेक शिष्याओं ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

यह साध्वीजी जब गृहस्थाश्रम में थीं तब उनके पास लाल रंग का एक मूल्यवान और आकर्षक रत्न था। दीक्षा लेते समय उन्होंने यह रत्न अपने साथ रख लिया था।

रोज उस रत्न को देखती रहती थीं। उसे हाथ में रखकर खेलती रहती थीं और उसके प्रति बहुत रागात्मक भाव रखती थीं।

यह सब ठीक नहीं ,ऐसा समझने पर भी वे उसका त्याग नहीं कर पायी थीं।

उम्रह के बढने पर भी उनकी यही दशा रही।

उन्होंने कालधर्म प्राप्त किया। शिष्याओं को इस बात का पक्का यकीन था कि उनके गुरु कोई अच्छी सद्‌गति को ही प्राप्त हुई हैं।

कुछ समय बाद उपाश्रय में एक छिपकली को घूमते हुए पाया। यह छिपकली साध्वीजियों से बहुत घुलमिल गई। वह हर किसी की गोद में जाकर बैठ जाती थी। बहुत उछलकूद मचाती थी। साध्वीजियों के मुख की ओर अनिमेष नेत्रों से देखती रहती थी।

एकबार किसी ज्ञानी महात्मा का आगमन हुआ। मुख्य साध्वीजी ने इस छिपकली के विशेष स्नेह की वजह पूछी तो उन्होंने बताया कि "इस छिपकली में आपकी गुरुणीजी का जीव है। लाल रत्न के प्रति मोहवश उसने दुर्गति का आयुष्य बांधा है। वह आप सब की सोहबत में बहुत आनंद अनुभव करती है।"

उस दिन सारी साध्वीजियों को रागदशा की भयावहता का अहसास प्रत्यक्ष रूप से हुआ।

# 122. ''ओ अंगुठी! तुम श्रीखण्ड खाओ।''

माँ और पिताजी का देहावसान हो चुका था।

घर में मात्र दो ही लोग बचे ते –भाई और बहन।

भाई धनदत्त और बहन लक्ष्मी।

घोर परिश्रम करके भाई ने बहन लक्ष्मी को धनिक परिवार में बिदा किया। इस विवाह के कारण उसके पास जो भी बचत थी वह खर्च हो गई थी।

धनदत्त ने धनोपार्जन करने के लिए परदेश की ओर रुख किया। रास्ते में बहन का घर पडता था। भाई को एकदम खस्ता हालत में देखकर बहन के मन में उसके प्रति जरा भी सद्भाव जगा नही। वह अमीरी के नशे में चकचूर थी।

भाई को गाय बांधने के स्थान पर चारपाई डालकर सुलाया। रातभर जीव-जंतु काटते रहे। भाई की समझ में सबकुछ आ गया। वह मन ही मन जल उठापर चूप रहा। वह परदेश गया। वहाँ परिश्रम और भाग्य रंग लाया .भाग्य जग गया। जहाँ भी हाथ डाला,धन हाथ लगा। वह लक्षाधिपति हो गया। हीरे की अंगुठी,सोने की माला आदि आभूषणों से उसने अपनी देह को सजा दिया।

घर वापस लौटने की राह में बहन का घर आया। अमीरी में झूम रहे भाई को देख बहन अतिहर्षित हो गई। भाई का सत्कार किया। अपने अंक से भर लिया। भोजन में श्रीखण्ड और पूडी बनायी गई। चांदी की थाली में खाना परोसा गया पर भाई ने भोजन ग्रहण करना शुरु नहीं किया। अतः बहन ने अपने भाई से पूछा कि "मेरे प्रिय वीरा ! तुम भोजन क्यों नही ग्रहण कर रहे ?"

बाद में भाई ने एक एक करके आभूषण उतारना शुरु किया। अंगुठी से कहा कि "ओ अंगुठी ! तुम श्रीखण्ड खाओ।"ओ माला ! तुम कढी पीओ। आदि।"

बहन की समझ में सारी बात आ गई। उसने पूर्व कृत दुर्व्यवहार के लिए अपने भाई से क्षमा मांगी।

# 123. पाप का जड़ : लोभ

एक ब्राह्मण था : वह महापण्डित था।

एकबार बातचीत के दौरान पण्डिताइन ने उससे पूछा कि "पाप की जड कौन है?"

पण्डित ने बहुत विचार किया। काम,क्रोध,निंदा आदि अनेक दोष पाप की जड के रूप में अनुभव किये पर कोई एक चौकस दोष नजर नही आया।

एकदा रास्ते में उपाश्रय नजर आया। जैन साधु से पूछने की इच्छा हुई कि "पाप की जड कौन?"

उपाश्रय में कोई बहुत बडे विद्वान महात्मा थे। पण्डित ने उनसे यह प्रश्न पूछा।

महात्मा ने उसे इसका जवाब पाने के लिए दूसरे दिन आने के लिए कहा।

दूसरे दिन पण्डित यथासमय पहुँच गया। पुनः वही सवाल पूछा।

महात्मा ने कहा "आपके सवाल का जवाब मैं बाद में दूंगा। पहले आप उपाश्रय के बाहर मरे पडे कुत्ते को उठाकर दूर ले जाकर छोड दो।"

पण्डित शौचवादी था। वह मुर्दे को कैसे छू सकता है ? उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया।

उस समय उपाश्रय में एक वणिक श्रावक बैठा हुआ था। महात्मा ने उससे कहा कि वह पण्डित को एक सोनामुहर दे दीजिए।

वणिक श्रावक ने कहे अनुसार किया। महात्मा ने पण्डित से कहा,"पण्डितजी ! अब तो मरे हुए कुत्ते को दूर छोड आइए।

पण्डित हक्का-बक्का सा उठ खडा हुआ और मरे हुए कुत्ते को उठाकर दूर दूर तक छोड आया। पुनः महात्मा से सवाल पूछा कि "पाप की जड कौन ?"

महात्मा ने कहा-"अभी भी समझ में नहीं आया ? एक सोनामुहर में आपने कैसा काम कर दिया ! पाप का मूल लोभ।"

# 124. धनमूर्च्छित साधु ने मार खायी

एक साधु गाँव के बाहर आश्रम बनाकर रहता था।

एक दिन कोई आदमी उसके आश्रम में गया। साधु ने उसे खाना खिलाया। उसने वहाँ रात्रिनिवास किया। उसके पास पचास सोनामुहरों से भरी थैली थी। दूसरे दिन सुबह बिदा होते वक्त थैली आश्रम में भूल गया।

उजाला होने पर साधु ने उस थैली को देखा। पचास सोनामुहरों में उसका मन लालायित हुआ। वह व्यक्ति भी थैली लेने के लिए नही आने के कारण साधु ने उसे अपने पास रख लिया। पर साधु ने जहाँ थैली को रखा कि उसके मन में शंका जगी कि कहीं कोई व्यक्ति यहाँ से इस थैली को चोरी तो नहीं कर लेगा ना !

साधु तो बारबार थेली को एक जगह से दूसरी जगह रखता गया। आखिरकार उसने अपनी जटा में उन पचास सोनामुहरों को बांध दिया।

दिन-रात वह सोनामुहरें निकालकर गिनता रहता था। ऐसा करने में उसे बहुत आनंद आता था।

एक दिन पडोसी ने दीवार के छेद से यह सब देखा। उसका मन भी सोनामुहरों से मोहित हो गया। उसके मन में इच्छा जगी कि वह उन सोनामुहरों को हस्तगत कर ले।

उसने साधु को अपने घर भोजन करने के लिए बुलाया। साधु भोजन करके आराम फरमा रहा था कि उसने अचानक चीखना-चिल्लाना शुरु कर दिया। वह घर के लोगों से पूछने लगा कि "मेरी पचास सोनामुहरें कहाँ गई ?"

कुछ देर बाद साधु की जटा को पकडा। उसमें से पचास सोनामुहरें निकली। सबने मिलकर साधु को चोर करार देते हुए बहुत मारा-पीटा !

बेचारा साधु तो आश्रम वापस लौट गया।

# 125. मुनि वचन के कारण पांच मौत

(टिप्पणी:अधीरता तथा उतावली के कारण अमर्याद कुछ बोल दिया जाये तब उस आचरण का बहुत बुरा परिणाम आता है। अच्छी बात भी यदि बिना सोचे समझे कह दी जाने से उसका परिणाम पांच जीवों की हत्या में परिणत हुआ। तो गलत या असत्य बात तो कैसे उच्चरित हो सकती है। इस कथा को शान्तिपूर्वक पढें ,बहुत बोधप्रद है।)

बारह बारह वर्ष सूर्य उदित हुआ और अस्त भी हुआ। अभी भी उसके पति वापस नही लौटे हैं। ऐसे विचार के साथ एक स्त्री दरवाजे से सटी खडी है,पति की प्रतीक्षा कर रही है। यह उसका नित्य कार्यक्रम हो गया था।

एक दिन की बात है। कोई विशिष्ट ज्ञानी मुनिवर राह से गुजर रहे थे। वे भिक्षार्थ निकले हुए थे।

उस पति विरहिणी ने अपने आंगन में पधारकर लाभ देने के लिए मुनिवर से बिनति की। मुनि ने उसकी बिनति का स्वीकार किया।

भिक्षा लेने के बाद ,वापस लौटते वक्त मुनि को रोककर उस औरत ने मुनि से कहा कि-"मुनिवर! और तो कुछ नही चाहती हूँ पर मेरे पति के आगमन की राह तकते तकते थक गई हूँ। यह दुर्ध्यान मुझे बहुत सताता है। आप बहुत ज्ञानी हैं। मुझे यदि उनके आगमन का समय बता दें तो मैं रोज उनकी प्रतीक्षा करना छोडकर धर्मध्यान में अपना मन रमाऊँ और उनके आगमन के उस निश्चित दिन को जानकर मैं निश्चित हो जाउँगी।"

यदि एक स्त्री इस प्रकार दुर्ध्यान से मुक्त हो सकती हो तो ज्ञान का सदुपयोग क्यों न कर लिया जाये ? इस विचार के साथ विशिष्ट ज्ञानी मुनि ने कहा कि "बहन ! आज से तीसरे दिन शाम को तुम्हारा पति आंगन में उपस्थित हो जायेगा।

वह औरत तो बहुत राजी हो गई। तीसरे दिन की सुबह से उसके चेहरा प्रफुल्लित हो गया। पति का स्वागत करने के लिए उसने सोलह शृंगार सज लिये। मुँह में पान रखा। मांग में सिंदुर भरा।

और सचमुच शाम ढलते ही उसके पति का आंगन में आगमन हुआ।

पत्नी ने उनकां बहत प्यार से स्वागत किया पर पति के मन में शंका हुई कि "इस औरत को मेरे आगमन के बारे में तो कुछ अता-पता है नही तो उसने यह साजसज्जा किसके लिए की होगी ? क्या वह कुलटा होगी ?"

स्त्री के दुष्चारित्र्य की इस शंका को निर्मूल करने के लिए पति ने आखिरकार पत्नी से पूछ ही लिया।

उस औरत ने हँसते हुए कहा :"रे ! ऐसी दुष्ट कल्पना आप क्यों कर रहे हैं ? मुझे तो गाँव में विराजित जैन मुनि ने आपके आगमन के बारे में तीन दिन पूर्व ही बताया था। इसी लिए आज मैंने सोलह शृंगार सजे हैं।"

पर...इस बात से पति के मन का समाधान नही हुआ। दूसरे दिन वह सुबह मुनि के ज्ञान की कसौटी करने के लिए उपाश्रय गया। सारी बातें हुई फिरभी समाधान नही हुआ। आखिरकार उसने पूछा कि "मुनिवर यदि आप इतने ज्ञानी हैं तो मुझे इतना ही बताइए कि ,मेरे घर घोडी कब सगर्भा होगी ? और उसके पेट में कितने बच्चे हैं ?"

"दो " ,तुरंत मुनि ने प्रत्युत्तर दिया।

इस सत्य की परख की अब कहाँ देर थी ? घर जाकर तुरंत उस आदमी ने घोडी के पेट पर तलवार से वार कर दिया और तत्क्षण घोडी के कटे पेट से दो बच्चे बाहर निकल आये। सामने खडी उसकी पत्नी से यह दृश्य देख नहीं गया। वह चीखकर बेहोश होकर जमीन पर गिर गई।

मध्यरात्रि में भी उस स्त्री को नींद नहीं आयी।" अपने निमित्त तीन जीवों की हत्या ! यह विचार उसके लिए जानलेवा सिद्ध हुआ। उसने भी फांसी के फंदे पर लटककर आत्महत्या कर ली।

सुबह होते ही मुनि को यह खबर मिली। इन चार हत्याओं की जड में स्वयं हैं ,ऐसा मानकर अनशन करके देहत्याग कर दिया। उस दिन नगर में सनसनी फैल गई। सब लोग एक ही बात कर रहे थे कि "भाई ! कुछ भी बोलने से पूर्व खूब विचार कर लिया जाये।"

## 126. किसके बोध का असर होगा?

कहा जाता है कि व्यासजी किसी राजा को भागवत का अध्ययन करा रहे थे। उसमें एक दिन व्यासजी ने राजा से कहा कि,"परिक्षित को केवल सात ही दिन भागवत श्रवण कराया और परिक्षित का कल्याण हो गया !" राजा ने प्रश्न किया कि "तो महिनों से मैं आपसे भागवत का श्रवण करता आ रहा हूँ फिरभी मेरा कल्याण क्यों नही हो रहा ?"

सोचकर जवाब देने का कहकर व्यासजी अपने घर गये। अपने बेटे से सारी बात की। बेटे ने जवाब खोज निकाला। दूसरे दिन वह व्यासजी के साथ राजसभा में गया।

राजा ने जब उत्तर मांगा तब व्यासजी के बेटे ने राजा तथा व्यासजी को अलग अलग खंभे के साथ बांध दिया। तत्पश्चात् उसने राजा से पूछा कि ,"क्या मेरे पिताजी अभी आपको छुडा सकते हैं?" राजा ने इन्कार करते हुए कहा कि "तुम्हारे पिता स्वयं बंधन में बंधे हुए हैं तो वह मुझे कैसे छुडा सकते हैं ?" बेटे ने कहा,"बस...यही आपके सवाल के लिये मेरा जवाब है कि व्यासजी बरसों पर्यंत भागवत सुनायें तब भी आपको शुकदेवजी की तरह आपको छुडा नहीं सकते क्योंकि वे खुद संसार के बंधन में फँसे हुए हैं।"

## 127. बाह्य व्यवहार का महत्व

किसी एक गाँव में एक अनजान (नये) कथाकार संन्यासी पधारे थे। भाविक जन बडी मात्रा में उपस्थित रहकर उनकी धर्मकथा श्रवण का लाभ लेते थे। संन्यासी के निर्मल चारित्र का लोगों पर अच्छा प्रभाव पडा था। एक दिन एक किशोर ने स्वामीजी से कहा कि "मेरी माँ आपसे व्यक्तिगत रूप से मिलना चाहती हैं। आप मुझे समय दीजिए।"

स्वामीजी ने एक हफ्ते बाद का दोपहर का समय तो दिया पर उस समय उस किशोर को भी हाजिर रहने के लिए कहा। किशोर ने बताया कि "मेरी उपस्थिति की कोई आवश्यकता नही है। मेरी माँ

से आप निजी तौर पर मिलेंगे। इतने मात्र से क्या लोग गलत कल्पनाएँ करेंगे ?"

स्वामीजी ने ऐसी कल्पना की सम्भावना बतायी पर किशोर नही माना। अतः उसे प्रतीति कराने के लिए स्वामीजी ने माँ की अंगिया (चोली) मंगवायी।

दूसरे दिन कथा के समय से पूर्व ही स्वामीजी ने वह अंगिया और अपना लंगोट धोकर एक ही डोरी पर पास-पास सूखने के लिए रखा।

श्रोताओं की नजर उस तरफ गई और बडबडाना शुरू हो गया। कथा में किसी को रुचि नही रही। रात होते होते तो गाँव भर में स्वामीजी के चारित्र विषयक शंका-कुशंकाएँ फैल गईं।

किशोर के कान पर भी बात पहुँच गई। वह तो भौंचक रह गया।

दूसरे दिन सुबह वह स्वामीजी से मिला और उनकी कल्पना की सच्चाई की सराहना की।

स्वामीजी ने कहा-"भला ! अभी तो दो जड वस्तुएँ ही डोरी पर सूख रही थीं कि इतना हंगामा हो गया ,तो तुम्हारी माँ के साथ निजी तौर पर बैठने में तो ये भक्त लोग मेरी तो फजिहत कर देते ना !.

## 128. आचरण और उपदेश में फर्क असह्य हैं।

रामकृष्ण परमहंस के गुरु का नाम तोतापुरी था। अद्वैत की मान्यता के वे प्रखर हिमायती थे। वे सगुण भक्ति को हेय समझते थे।

जबकि शिष्य रामकृष्ण पर सगुण भक्ति का ऐसा प्रभाव था कि माँ (कालि) के बिना उन्हें पलभर भी गँवारा नही था। गुरु पक्के ज्ञानयोगी ! शिष्य पक्के भक्तियोगी !

कईबार शिष्य गुरु से सगुण-ब्रह्म की बात करे पर स्वभाव वश तोतापुरी उसकी बात को जरा भी महत्व नही देते थे। एक दिन तोतापुरी धुनी रमाये बैठे थे। चिलम पी रहे थे कि वहाँ कुछ चार लोगों ने आकर चिलम पीने के अंगारे उस धुनी से उठाकर भाग खडे हुए।

इस घटना से तोतापुरी एकदम उत्तेजित हो गये। मुख से सरस्वती बहने लगी। हाथ में सलाख (छड) उठाकर उन लोगों की पिटाई करने के लिए दौड पडे।

आगे आगे दौड रहे थे अंगारे उठानेवाले लोग और पीछे पीछे दौड रहे थे तोतापुरी।

यह देखकर रामकृष्ण ने गुरु को सगुण ब्रह्म समझाने का मौका हाथ में ले लिया।

वह जोर जोर से चिखने लगा। "गुरु ! गुरु! यह क्या कर रहे हैं ? वे भी ब्रह्म हैं और आप भी ब्रह्म हैं। क्या कभी ब्रह्म का पीछा ब्रह्म कर सकता है !

और वह भी मारने के लिए ...?" यह शब्द सुनते ही तोतापुरी दौडने से रूक गये "ब्रह्म" पदार्थ के दूसरे पक्ष से उनको आज ही साक्षात्कार हुआ। उपदेश और आचरण अभिन्न हो गये। निश्चय और व्यवहार की भिन्न भूमिकाएँ समझ में आ गई। गुरु ने शिष्य का उपकार स्वीकार किया।

## 129. व्यवहार-शुद्धि अति आवश्यक

उस समय पाटण में राजा भीम का शासन चल रहा था। उनकी पटरानी का नाम चौलादेवी था।

उस नगर में एक संन्यासी रहते थे। वह हठयोगी नहीं थे,राजयोगी थे।

राजयोग में देह को कष्ट देकर कार्यक्षम होने की बात मान्य नही होती। उल्टे देह को अच्छी तरह से रख-संभालकर –स्नानादि कराकर , इत्र लगाकर, पान(ताम्बुल) आदि खाकर मन को अति प्रसन्न रखते हुए आत्मसाधना करने की रीति का स्वीकार किया गया है।

इस राजयोगी का बाह्य जीवन अतिविलासपूर्ण लगता था। बेशक,वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। अनासक्त योगी थे।

उनके आंतरसौंदर्य के कारण उन्होंने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थी। उसमें उनके चरणों के प्रक्षाल का जल तो लोक में सर्व रोगहारी के रूप में ख्यात था।

राजयोगी चौबीसों घण्टे पान चबाते रहते थे। उत्कृष्ट कोटि के इत्र और पुष्पों की सुगंध से

सुवासित रहते थे । रात्रि के समय अंगभंग करनेवाली, मुस्कुराती, लास्य करनेवाली नर्तकियों से बतियाते भी थे ,मस्ती भी करते थे ।

राजा भीम धार्मिक वृत्ति के थे । विलासी जीवन जी रहे योगी के चरणों का प्रक्षाल-जल सैंकडों लोगों की बिमारियों को दूर करता है ,इस बात से वे आश्चर्यचकित हो जाते थे । उसमें भी उन्होंने जब जाना कि नगर की किसी धनिक पुत्रवधू से लगे भयंकर भूत के साये को बडे-बडे त्यागी ,खाखी संन्यासी भी दूर नही कर सके ,उसे उस राजयोगी के चरणजल से एक ही पल में भगा दिया गया । इस घटना से राजा भीम कुछ क्षण के लिये अवाक् से रह गये थे ।

"विलास प्रचुर जीवन जी रहे संन्यासी को ऐसी लब्धि कैसे प्राप्त हो सकती है ? और यदि ऐसा हुआ तो जनता की धर्म के प्रति श्रद्धा हिल जायेगी ।" राजा का मन अविरत ऐसा कहता रहता था ।

राजा की मनोवेदना को समझकर रानी चौलादेवी ने संन्यासी के जीवन का रहस्य जानने के लिए उसकी टोली में शामिल हो जाने की सम्मति प्राप्त की ।

एक दिन नर्तकी का स्वांग धारणकर चौलादेवी राजयोगी की नर्तकियों की टोली में शामिल हो गई।

पहली ही रात्रि के नृत्य में वह भी जुडी और मदहोश होकर नृत्य करते करते वह राजयोगी के एकदम निकट आ गई । काम के तीक्ष्ण कटाक्ष करते करते उसने संन्यासी से कहा ,"मेरी नजरों से नजरें मिलाइए ।"

और ...यह कामुकतापूर्ण शब्द सुनकर राजयोगी क्रोधवश आपादमस्तक जल उठे । उन्होंने चौलादेवी को हल्के शब्दों से तिरस्कृत कर दिया और उसके शरीर पर जोर से थूक दिया । पान की पीक का लाल रंग चौलादेवी के अंगों पर जहाँ तहाँ छिडक गया ।

जिस जिस स्थान पर पीक उडकर गीरी ,उस जगह पर चौलादेवी को कुष्ठरोग हो गया ।

इससे वे अति व्यथित हुए । सुबह होते ही चौलादेवी ने राजमहल जाकर राजा भीम से सारी बात कह दी । कुष्ठ प्रभावित अंगों को दिखाते हुए अपनी कूरूपता के प्रति बेचैन होकर रोने लगी ।

राजा भीम ने रानी को आश्वासन दिया । उसे लेकर भीमदेव उस योगी के पास गये । राजा ने खुलकर सारी बातें बताई और कुष्टरोग से रानी को मुक्त करने के लिए नम्रतापूर्वक बिनति की ।

योगी ने कहा (मेरा चरणजल उन स्थानों पर लगा दो। अच्छा हो जायेगा।)

और हुआ भी वैसा ही। रानी रोगमुक्त हो गई और पूर्ववत् सौंदर्य को प्राप्त किया।

पर यह सब होते ही राजा भीमदेव को बहुत आश्चर्य हुआ।

विलासी को ऐसी सिद्धियाँ कैसे सम्भव हैं ? राजा के मन को यह प्रश्न सता रहा था। रातभर उसे नींद नही आयी। रातभर यही विचार चलता रहा।

आखिरकार वे मन ही मन इस निर्णय पर आये कि उस संन्यासी का बाह्यजीवन भले ही विलासी सामग्रियों से भरपूर होगा परंतु आंतरजीवन में वह विलास उसे दूर तक छूता भी नही होगा। उल्टे उसके आंतरजीवन में उत्कृष्ट कोटि की परमात्म भक्ति,विश्वमैत्री और प्रचण्ड आत्मशुद्धि होगी। उसके बिना ऐसी लब्धियाँ उसे प्राप्त ही नही हो सकती।

राजा भीमदेव का मन अब शुभ कल्पना की गति पकडकर आगे बढने लगा। उन्होंने सोचा कि फिर भी क्या ?" एक आत्मा अंतर से अत्यंत निर्मल हो। इससे वह बाह्य व्यवहार में अनुचित व्यवहार कर ही कैसे सकती है? लोग तो उसका बाह्य व्यवहार ही देखेंगे। यह देखकर वे भी ऐसा ही व्यवहार करेंगे और स्वयं को धार्मिक कहलायेंगे। यदि ऐसा हुआ तो प्रजा के जीवन में धर्म के नाम पर बहुत बडा पाखण्ड शुरू हो जायेगा। अतः उस राजयोगी को मुझे विनम्र भाव से यह बात तो करनी ही चाहिए। दूसरे दिन भीमदेव उस योगी के पास गये। आंतर्जीवन की भूरिभूरि अनुमोदना करने के साथ साथ बाह्यजीवन का उसके साथ मेल बनाये रखने की बिनति की। उसके कारण गिनाये। प्रजामानस में व्याप्त हो जानेवाले पाखण्ड का भयस्थान भी दिखाया।

एकाध क्षण सोच विचार कर राजयोगी ने भीमदेव से कहा –

"तेरी बात बिलकुल ठीक ही है। आज से ही मैं मेरे बाह्यजीवन में पूर्ण परिवर्तन कर देता हूँ। तुमने बहुत ही अच्छा काम किया है। तुम्हें मैं लाख लाख धन्यवाद देता हूँ।"

य ह शब्द सुनते ही राजा भीमदेव की आँख से हर्षाश्रु बहने लगे। योगी की सरलता पर वे मुग्ध हो गये। कोटि कोटि वंदना सहित वह वहाँ से बिदा हुआ।

# सौजन्य

## प्रभु भक्त

# 'मीरा'

# जरा सोचिएगा!

विज्ञान क्षेत्र (advertisement field) का एक अति सफल नियम ये रहा है ... एक ही चीज को बार-बार दोहराने से वह चीज-बात-विचार (भले झूठ हो या अर्ध सत्य) वह सुनने-देखने-पढने-जानने वालो के दिमाग पर हावी हो जाता है। धीरे-धीरे करके मन उसका संपूर्ण स्वीकार करने मजबूर हो जाता है।

उसी तरह Film industry या Sports world या Politics line के जो कोई भी celebrity बनते है ...बनाये जाते है....वे लोग अपने-अपने विचार-वाणी -वर्तन का गहरा प्रभाव आम जनता के उपर जरूर डालते है और (हम) लोग उन्ही के पीछे चलने लगते है। यह है मानवीय मनोवैज्ञानिक महासत्य !

तो उसी को लेकर अगर हम महापुरुषों के, गुणीजनों के, नेकदिल व्यक्तियों के परिचय में आना चाहेंगे तो उनके उन्नत जीवन के छोटे-बडे प्रसंगो से काफी प्रेरणादि प्राप्त कर सकते है । उसी को हमारे idol, Role model, mentor बनाकर आगे जाकर खुद भी महान बन सकते है ।

सिर्फ आधा घंटा प्रतिदिन बडे लोग खुद पढे, छोटे बच्चो को सुनाए, बच्चे खुद पढकर ही जीवन निर्माण की ओर आगे बढे ...

Firsst Look
IMPRESSION GUARANTEED....
9597511135